

सत्यकी ओर
(प्रथम कदम)

क्षु० दयासागर

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला प्रकाशन
श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान

श्री गणेशप्रसाद वर्णी-ग्रन्थमाला-१९ (२)

सत्यकी ओर

(प्रथम कदम)

क्षु० दयासागर

श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला-प्रकाशन

श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान

श्री गणेशप्रसादवर्णी-ग्रन्थमाला

सम्पादक और नियामक

पं. फूलचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

डॉ० दरबारीलाल कोठिया,

रीडर, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

प्रकाशक:

मंत्री, श्रीगणेशवर्णी दि० जैन संस्थान

सन्मति जैन निकेतन, नरिया

वाराणसी-५

प्रथम संस्करण: १००० प्रति: मार्च १९६९ ।

द्वितीय संस्करण: ११०० प्रति

महावीर-जयन्ती, वी० नि० सं २५००

४ अप्रैल, १९७४

मुद्रक:

राजेश कुमार शर्मा

स्वस्तिक मुद्रणालय

गोलधर, वाराणसी ।

प्रकाशकीय

प्रस्तुत ' सत्यकी ओर ' कृतिका पहला संस्करण मार्च १९६९ में प्रकाशित हुआ था। हमें प्रसन्नता है कि पाठकोंने उसे इतना पसन्द किया कि वह दो वर्ष पूर्व ही समाप्त हो गया और हमें यह दूसरा संस्करण पाठकोंकी माँगको देखते हुए निकालनेके लिए बाध्य होना पड़ा है।

यद्यपि यह शब्द-कलेवरमें अल्प है तथापि अर्थपरिणाममें बुहत है। इसके उपस्थापक आध्यात्मिक सन्त श्री दयासागरजी हैं। इसमें उन्होंने व्यापक दृष्टिकोणसे मानवमात्रके ही नहीं, प्राणिमात्रके हितका मार्ग प्रदर्शित किया है। सत्य क्या है, उसके ग्रहणका उपाय क्या है और उसके ग्रहणका प्रयोजन क्या है ? इन सब प्रश्नोंका इसमें सरल, सुगम और आकर्षक शैलीसे समाधान किया गया है।

हमें दुःख है कि महाराज दयासागरजी का दो वर्ष पूर्व स्वर्गवास हो गया। उनकी इच्छा थी कि यदि पाठकोंको उनकी यह कृति पसन्द आयी, तो वे उसका दूसरा कदम भी प्रस्तुत करेंगे। पर असमयमें ही उनके काल-कवलित हो जानेसे हम उनके दूसरे आदि कदमोंसे वंचित रह गये।

प्रथम संस्करणके प्रकाशनमें सागर-समाज के उत्साही कार्यकर्ता और उदीयमान युवक सिंघई जीवनकुमारजी फर्म-सिंघई नाथूराम जीवनकुमार सागर और उनके सहयोगियोंने आर्थिक सहकार किया था। आशा है वे इस दूसरे संस्करणमें भी सहयोग प्रदान करेंगे।

हमें महान् दुःख है कि हमारे सहयोगी और अनन्य सुहृद् डॉ० नेमिचन्द्रजी शास्त्री, ज्योतिषाचार्य, एम० ए०, पी-एच० डी०, डी० लिट्, आरा (बिहार) का गत ९ जनवरी १९७४ को निधन हो गया और संस्थान उनके सहयोगसे सदाके लिए वंचित हो गया।

वर्णी-ग्रन्थमाला के पाठकोंको यह ज्ञात कर प्रसन्नता होगी कि प्रबन्धकारिणीके सतत प्रयत्नोंसे ग्रन्थमाला अब ' श्री गणेशवर्णी दि०

जैन संस्थान ' के रूपमें विकसित हो गयी है ।

महावीर-जयन्ती,
चैत्र शुक्ला १३,
४ अप्रैल, १९७४

दरबारीलाल कोठिया
मन्त्री, श्री गणेश वर्णी दि० जैन संस्थान '

प्राथमिकी

“ सत्यमेव जयते ” इस सूक्तिको भारतवर्षकी सरकारने मान्यता देकर राष्ट्र-चिह्न में उँचा स्थान दिया और इसे अखिल भारतवर्षका राष्ट्रीय महामन्त्र घोषित किया है। इससे भारतवर्षने सत्यको सर्वोपरि-सर्वोच्च माना, यह सुस्पष्ट है। विश्वके सारे राष्ट्रों, धर्मों, सम्प्रदायों आदिका भी एकमतसे यही महामन्त्र होना चाहिए और प्रायः है भी। कोई राष्ट्र, कोई धर्म या कोई सम्प्रदाय सत्यको महान् न मानता हो, ऐसा मिल जाय, तो महाविस्मयकी बात होगी। लेकिन ऐसी बात दिखनेमें नहीं आती। तात्पर्य यह कि लगभग समस्त विश्वको यह मान्य है कि सत्य महान् है; ग्राह्य है।

मानवीय जीवन में उँचा सत्य क्या चीज है और उसका प्रारम्भ कहाँसे ? इसे ही बतानेका यत्न इस पुस्तिकामें हुआ है। इसमें पाण्डित्यप्रदर्शन या परिमार्जित उच्चकोटिकी भाषा आदि प्रायः अधिक नहीं मिलेगी। यह तो सत्य के प्रेमी एवं निर्दोष सत्यके खोजी ऐसे विश्वनिवासी किसी भी मानवको-सत्याग्रहीको सरल भाषामें प्राथमिक दिग्दर्शन है निर्दोष एवं उच्च सत्यकी ओर कदम बढ़ानेके लिए। अतः निष्पक्ष एवं सरल वत्सल भावनासे इसमें हृदयगत बिचारोंको रखा गया है। भाषा एवं साहित्यिक मूल्योंकी दृष्टि से यह निम्न दर्जेकी रचना हो सकती है, किन्तु भाव निःसन्देह पवित्र एवं कल्याणमय है। विश्वनिवासी एक भी सत्याग्रही मानव इसका उपयोग कर लेनेके लिए जाग उठे, अपना जीवन निर्दोष सत्यसे अलंकृत एवं महान् बना सके और स्वयंका कल्याण कर लेवे तो भी लेखकका पवित्र प्रयत्न सफल हो जायेगा।

हृदय में यही मधुर भाव है कि “ सत्य का सर्वत्र आदर हो और सर्वका कल्याण हो। ”

ॐ भद्रं भूयात् ।

- दयासागर

हृदयोद्गार

श्री १०५ पूज्य क्षुल्लक दयासागर जी महाराज द्वारा लिखित ' सत्यकी ओर ' पुस्तक देखनेका सुअवसर प्राप्त हुआ, यह आधुनिक एवं सुबोध भाषामें सर्वजनहितकी दृष्टि से लिखी गई है। प्रत्येक व्यक्ति सुखी होनेका अभिलाषी है, परंतु सुख-प्राप्तिके सत्य मार्गका ज्ञान न होनेके कारण विपरीत मार्ग ग्रहण कर वह सुखके बदले दुःखोंकी ही वृद्धि करता रहता है। इस पुस्तक का विवेकपूर्वक अध्ययन करनेसे सुखका मार्ग स्पष्ट रूपसे प्रकट हो जायेगा, इसमें सन्देह नहीं है।

जगत्के अनंत पदार्थोंका एवं उन सबसे भिन्न अपनी आत्माका यथार्थ स्वरूप न समझने के कारण ही यह प्राणी अन्य पदार्थों में इष्टानिष्टत्वकी कल्पना कर उनके संयोग-वियोगमें दुःखी होता रहता है। यदि उनको मात्र ज्ञेय (जानने योग्य) मानकर उनमें हेयोपादेयता (ग्रहण योग्य या छोड़ने योग्य) की असत्य कल्पना करना छोड़ दे, तो इसके दुःखकी जड़ सूख जायगी। इसी विषयका प्रकृत पुस्तकमें सुन्दर ढंगसे विवेचन किया गया है। अतःइसका ' सत्यकी ओर ' यह नाम सार्थक है।

—दयाचन्द्र सिद्धान्तशास्त्री

प्रशस्त विचार

विश्वका प्रत्येक प्राणी सुख-शान्ति चाहता है और उसे प्राप्त करनेका यथाशक्ति प्रयास भी करता रहता है, परंतु उसे सुख-शान्तिकी प्राप्ति न होनेसे वह दुःखी ही बना रहता है। फलतः अधिकांश मानव अपने उस सुखप्राप्तिके पुरुषार्थ को छोड़ भी देते हैं और कुछ मानव उस पुरुषार्थको करते रहते हैं सुखप्राप्तिकी आशाके साथ। पशु-पक्षी आदि कम चेतनावाले प्राणी यथाशक्ति प्रयत्न करने पर भी यदि अपने हितको जीवनमें प्राप्त करनेमें असमर्थ रहते हैं तो कोई आश्चर्यकी बात नहीं, क्योंकि उनके पास सत्य पुरुषार्थ नहीं है। परंतु आश्चर्यकी बात तो यह है कि मानव जैसा बुद्धिजीवी, सुन्दर, पुरुषार्थी प्राणी भी अपने जीवनको सुख-सन्तोषपूर्ण नहीं बना पा रहा है और पशु-पक्षियोंसे भी अधिक अपने जीवनको उत्तरोत्तर आकुलित बनाता जाता है। इस विचित्र दशा पर यदि गम्भीरतासे विचार किया जाय तो यहीं निष्कर्ष निकलेगा कि मानवके पास सत्यता नहीं है, सत्यता उससे कोसों दूर है। इसीसे उसका जीवन आकुलतापूर्ण बना हुआ है। इस आकुलता-अशान्ति-दुःखको दूर करनेके लिए सत्याग्रहकी महती आवश्यकता है।

अतएव अनेक शास्त्र व सन्त सत्याग्रह पर जोर देते हैं। जैसे- 'सत्यपूतं वदेद्वाक्यम्', 'सदा सत्यं समाचरेत्', 'सत्यमेव जयते नानृतम्', 'सत्यं शिवं सुन्दरम्', 'सत्यसत्यं समाचरेत्' इत्यादि। इससे सिद्ध है कि सत्याग्रहके बिना कदापि मानव-समाजका कल्याण नहीं हो सकता। अतः प्रस्तुत 'सत्यकी ओर' पुस्तकमें मानवको सत्य पथ की ओर प्रथम कदम बढ़ानेके लिए ही प्रेरित किया है। विश्वास है कि निष्पक्ष एवं उदार दृष्टिकोणसे रचित एक महान् सन्तकी यह रचना अभिनन्दनीय होगी।

— दयाचन्द्र साहित्याचार्य

सत्यकी ओर



प्रिय चिदात्मन् !

तुम महान् बनो ! सुन्दर बनो !! अमोल मानव जीवनमें सत्य महामानव बनो !!! तुम किसी भी राष्ट्र के, देशके, प्रान्तके, नगरके, ग्रामके हो; किसी भी धर्मके, सम्प्रदायके, पन्थके, मजहबके, विचारके हो; किसी भी कुल, जाति, वंश या घरानेके हो; पुरुष या स्त्री किसी भी देहमें रहनेवाले हो; बाल्य, यौवन, वृद्धत्व आदि किसी भी अवस्थावाले शरीरमें निवास करनेवाले हो; इस प्रकार तुम कोई भी हो, सत्यको समझने और ग्रहण करनेका अधिकार तुम्हें इस विशाल विश्वमें सदा है। आखिर तो तुम एक मानव हो और रहते हो इस विश्वमें, यह एक ऊँचा तथ्य है। अतः सर्वप्रथम यह ऊँची दृष्टि खोल दो और उद्घोष कर उठो कि ' सत्यको समझने और ग्रहण करनेका नित्य अधिकार रखनेवाला मैं एक विश्वनिवासी मानव हूँ । '

प्रिय विश्वनिवासी मानव !

कृमि, कीट, पशु, पक्षी आदि विश्वमें दिखायी देनेवाले तानाविध जीवनोंमें मानवजीवन ही सर्वश्रेष्ठ है, सर्वोच्च जीवन है, अत्यन्त मौलिक जीवन है। इस विषयमें क्या वैज्ञानिक, क्या तत्त्वज्ञानी महात्मा, प्रायः विश्व के सभी सूक्ष्म विचारकोंका एक मत है। ऐसे सर्वश्रेष्ठ मानव जीवनको यदि असत्य में ही खो दोगे, तो कितना घोर अनर्थ होगा। तुम किसी भी धर्म-पन्थ-सम्प्रदाय आदिके रहो, परंतु परम्परासे चले आये हुए अपने कुलधर्म पर आँखें मूँदकर विश्वास न करो। यदि इतना महासाहस, इतनी कड़ी हिम्मत तुममें जाग उठी हो तो तुम महासत्यको प्राप्त करने योग्य महान् बन सकोगे। अपने कुलधर्मको भी अतितीक्ष्ण और अतिसूक्ष्म दृष्टिसे देख लो। हृदयको सम्पूर्ण परिपूर्ण निष्पक्ष बनाकर, सत्याग्रहके वीरावेशसे भरकर, सत्यके चक्षुसे अपने कुलाचारको भी देखो। तभी तुम इस विशाल विश्वमें सत्यकी ओर निर्दोष रीतिसे, निस्संशय रूपसे कदम बढ़ा सकोगे, जीवनको सत्य बना सकोगे।

प्रिय बुद्धिजीवी मानव !

आयु अल्प है, बुद्धि अल्प है, जीवन छोटा-सा है, देर मत करो। जीवनको सत्यपूर्ण बनाओ। लो ! सम्पूर्ण जीवन को ही महान् जीवन, सत्यमय जीवन बनानेवाली एक अतीव महत्त्वपूर्ण बात पूरे-पूरे निष्पक्ष बनकर पूर्णतः ध्यानसे सुनो। **सत्यनिष्ठजीवनके लिये- 'सम्यग्दर्शन' को धारण करो।**

सम्यग्दर्शन क्या है ?

सम्यग्दर्शन माने सच्चा विश्वास-सच्ची श्रद्धा-सत्य आस्था। स्पष्ट शब्दों में- जगत्का व अपना वास्तविक स्वरूप जानते समय असत्य व भ्रमपूर्ण कल्पनाओंको त्यागकर सत्यको निष्पक्ष निर्णयपूर्वक जाननेसे जो निर्दोष 'सत्य श्रद्धान' जन्म लेता है उसका नाम है 'सम्यग्दर्शन'। इस सम्यग्दर्शनको धारण करो। निश्चय और व्यवहार इन दो प्रकारों द्वारा इसे अवश्य समझ लो-

१) समस्त 'विश्व' क्या है ? और इस विश्वमें स्वयं "मैं" क्या हूँ ? इन दो महा तथ्योंका यथार्थ निर्णय करके फिर समस्त विश्वसे विभक्त (पृथक्) ऐसे शुद्ध 'स्वयं' की अर्थात् 'स्वात्मा' की चिदानन्दात्मक अनुभूति करनेसे जो अनुभूतिरूप सत्य श्रद्धान होता है उसका नाम है 'निश्चय सम्यग्दर्शन-निश्चय सत्य'।

२) अब व्यवहार सम्यग्दर्शन-व्यवहार सत्यके बारेमें देखो। इसके विषयमें बहुत झंझट है, क्योंकि विश्वमें भगवान्के बहुत ही प्रकार माने गये हैं, शास्त्रों और गुरुओंके भी नाना प्रकार माने गये हैं। साधारण मानवका माथा चकरा जाता है यह सब उलझन देखकर। उसका सत्याग्रही हृदय पुकार उठता है कि आखिर भगवान्का सत्य स्वरूप क्या है ? कौन-से शास्त्र सच्चे हैं ? सच्चे गुरुकी परिभाषा क्या है ? अतः व्यवहारमें इनके निर्णयकी आवश्यकता पड़ती है। तो निर्णयपूर्वक उस 'व्यवहार सम्यग्दर्शन' को-'व्यवहार सत्य' को सुन लो-

समस्त विश्व में सत्य देव, सत्य शास्त्र, सत्य गुरु इन तीनोंके यथार्थ स्वरूपको, बाधक अनेक दोषोंसे रहित होकर और साधक अनेक गुणोंसे सहित होकर निर्णयपूर्वक जान लेनेसे, असत्य देव-शास्त्र-गुरुओं के त्यागपूर्वक जो उनमें सुरुचिपूर्ण 'सत्य श्रद्धान' जन्म लेता है उसका

नाम है ' व्यवहार सम्यग्दर्शन-व्यवहार सत्य । '

निश्चय सम्यग्दर्शन और व्यवहार सम्यग्दर्शन इन दोनों भेदों द्वारा खूब समझो उस सम्यग्दर्शनको । सत्यार्थरूप निश्चय सम्यग्दर्शन साध्य है और व्यवहार सम्यग्दर्शन उसका साधन है । यहाँ प्रथम निश्चय सम्यग्दर्शन रूप साध्यके बारेमें अर्थात् प्रथम निश्चय सत्यके बारेमें देखें, बादमें व्यवहार सत्यका भी विचार करें । पहले निश्चय सम्यग्दर्शनका स्वरूप समझकर बादमें व्यवहार सम्यग्दर्शनको समझ लेना गलत तो नहीं होगा ? नहीं, निश्चय-मुक्तिमार्ग साध्य है एवं व्यवहार-मुक्तिमार्ग साधन है, ऐसा युक्तिसिद्ध होनेसे प्रथम साध्यका ज्ञान कर लेना गलत नहीं । तो चलो, निश्चय सम्यग्दर्शनके बारे में देखें-

निश्चय सत्य:

विश्व क्या है ? विश्व दो पदार्थोंका ढेर है, जिसमें एक प्रकारके पदार्थ हैं जीव और दूसरे प्रकार के पदार्थ हैं अजीव (जड़) । मूलतः ये दो ही विश्वके तत्त्व हैं । खूब विचार कर देखो तो विश्व इन दो तत्त्वोंसे अन्य कुछ भी नहीं त्रिकाल में भी । इन दो पदार्थोंकी राशिमें तुम कौन हो, जीव या अजीव ? तुम ' मैं अजीव हूँ ' कहो, तो सच्चे हृदयसे कह नहीं सकोगे, क्योंकि तुम स्पष्टतया निःसन्देह रूपसे जानते हो कि ' मैं जीव हूँ ' । क्या है जीवका लक्षण ? जीव यह कि जिसमें चेतना पाई जाय । चेतना माने ? चेतना माने ज्ञान-दर्शनरूप शक्ति अर्थात् जानने-देखनेकी शक्ति । तो तुम देखने-जाननेवाले जीव हो । जिन जिनमें यह शक्ति पाई जाय वे जीव और जिनमें यह न पायी जाय वे अजीव । पशु-पक्षी, कृमि-कीट आदिमें यह ज्ञान-दर्शन होनेसे वे सब जीव हैं । पत्थर, मिट्टी, पुस्तक, पेटी, चटाई, अलमारी, बर्तन आदि चीजोंमें यह जीवत्व अर्थात् ज्ञान-दर्शनशक्ति न पायी जानेसे वे सब अजीव हैं । तुम जीव (Soul) हो, शरीर अजीव (matter) है । ज्ञान-दर्शन तुममें है, शरीरमें नहीं । शरीर ज्ञानशून्य अजीव पदार्थ है । जब तक आत्मा शरीरमें निवास करता है तभी तक शरीरके व्यापार होते हैं, आत्माके चले जानेके बाद शरीर-पदार्थको जला देते हैं व उसकी राख बन जाती है । प्रेत (मुर्दा) में भी आँखे हैं, कान हैं, नाक हैं, जिह्वा है, त्वचा है अर्थात्

पाँचों इन्द्रियाँ मौजूद हैं, जब कि अभी-अभी मरण हुआ है और प्रेत उपस्थित है तो उस प्रेतके सामने एक प्रयोग करो- पुस्तक खोलकर प्रेतकी खुली चक्षुरिन्द्रिय (आँखो) के सामने पकड़ो और कहो “ पढ़ो भैया ” ! क्या पढ़ेगा वह ? अर्थात् नहीं पढ़ सकता, क्योंकि शरीरके भीतर सुननेवाला, देखनेवाला, पढ़नेवाला जो था वह चला गया । उसे सुगन्धि दो और कहो - कैसी गन्ध है भैया ? क्या बतायेगा वह ? क्योंकि सूँघनेवाला भीतरी ज्ञानात्मा अन्यत्र चला गया । देहको जलाओ भी, तो भी स्पर्शका वेदन करनेवाला आत्मा चला जाने से अब वहाँ कौन वेदन करेगा और जलनसे हल्ला मचायेगा । तात्पर्य-देहमें रहकर आत्मा ही बाह्य जगत् का ज्ञान एवं अनुभव करता है, देह नहीं । तुम अपने ही बारे में सोचो न ?- आँखें देखती हैं देहकी, या उन आँखोरूपी दो चर्म-खिड़कियों द्वारा तुम देखते हो ? आँखे तो चमड़ी-मांसकी बनी हैं, वे क्या देखेंगी, देखते तुम हो भीतर से । कान दो चमड़ीके टुकड़े हैं, वे चमड़ीके टुकड़े सुनते हैं या तुम उन दोनों कानोंके द्वारसे सुनते हो ? साफ है कि सुनते तुम हो भीतरसे । इसी प्रकार नाकके द्वारसे तुम गन्धानुभव करते हो, चर्मकी नाक तो जड़वस्तु हैं, उससे गन्धानुभव नहीं हो सकता । एवं जिह्वाके द्वारा तुम ही रसज्ञान कर लेते हो, जिह्वा तो अजीव पदार्थ है । एवं चर्म (खाल) के द्वारा शीत, उष्ण आदि सारे स्पर्शका ज्ञान तुम (आत्मा) ही करते हो, खाल नहीं, खाल तो अजीव पदार्थ है । सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह कि जिसको इस जगत् के प्रायः सभी महापुरुषोंने पुकार-पुकार कहा-वह यही कि “ अपनेको पहचानो ” । “ आत्मानं विद्धि ” । “ Know thyself ” । “ मैंको पहचानो ” । “ स्वको समझो ” । “ Realize the I ” । जो जगत्में बहुत कुछ जानता है, परंतु स्वयं अपनेको ही नहीं जानता वह मानो कुछ नहीं जानता । स्वयंका ही ज्ञान न होना, यह दुनियाँमें बहुत आश्चर्यकी बात है । जो स्वयंको जानता है वही सच्चा जानकार है । तात्पर्य-जगत्में आत्मज्ञान सबसे ऊँचा ज्ञान है । विश्वकी सर्व विद्याओंमें अध्यात्मविद्या सर्वश्रेष्ठ है । इस विषयमें भारतीय नेता एवं वैदेशिक वैज्ञानिकोंके विचार भी जानने योग्य हैं जो इस प्रकार हैं-

“ मानव की सच्ची पूर्णता केवल शारीरिक या बौद्धिक दृष्टि से सुदृढ़ होनेमें नहीं, बल्कि अपनी उन आध्यात्मिक शक्तियोंको विकसित करनेमें है जो सबमें विद्यमान हैं। ”

- डा० सर राधाकृष्णन, भाषण ३० नवम्बर १९५८
बोसजन्म-शताब्दी, कलकत्ता ।

“ वैज्ञानिक एवं आध्यात्मिक मनोवृत्ति भारतीय विचारधाराकी एक विशेषता है। ”

- जवाहरलाल नेहरू-अहिंसावाणी, दिसम्बर ५८

“ बाहिरी शक्तियों से मत डरो, अपनी अन्तरात्मा को सुदृढ़ बनाओ। ”

- महात्मा गांधी - अहिंसावाणी, दिसम्बर ५८

“ आध्यात्मिकका सच्चा अर्थ ही वास्तविक है। कीमती चीज दुनियाँमें एक है- सक्रिय आत्मा। ”

राल्फ बाल्डो इमर्सन-अहिंसावाणी, जनवरी ६०

“ शान्तिमें एक शाही शान है। ”

- वाशिंगटन इर्विंग

“ दुनियाँ की तमाम शान-शौकत से बढ़कर है- आत्म-शान्ति। ”

- शेक्सपियर

अतः आत्मज्ञान अवश्य कर लो। तुम आत्मा हो, न कि अजीव पदार्थ। आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, अपार बलशाली है, अमूर्त है, देहप्रमाण है। दीपकके प्रकाशके समान स्व-परप्रकाशक एवं प्राप्तदेहानुसार संकोच-विस्तारके साथ देहमें व्यापनशील है। आत्मा अपार संसारमें सुखी दुःखी क्यों है? विश्वमें परवस्तुओंको अपना माननेसे। क्या क्या पर है, यह जानना हो तो विश्वके पदार्थों को जानो। चलो, अब विश्वमें और क्या क्या है, देखें।

विश्व में दूसरा जो अजीव पदार्थ है उसके पाँच प्रकार हैं- १ पुद्गल, २ धर्म, ३ अधर्म, ४ आकाश और ५ काल। इनमेंसे प्रथम तो आँखोंको दिखाई देनेवाला मूर्तिक पदार्थ-रूपीपदार्थ है, जिसे अंग्रेजी

में Matter मैटर कहते हैं; कोई इसे जड़ कहते हैं, कोई इसे पुद्गल कहते हैं, कोई प्रकृति कहते हैं। इस पदार्थमें स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये चार गुण अवश्य ही पाये जाते हैं, जो अन्य चार अजीव द्रव्यों एवं जीवों में नहीं पाये जाते हैं। इसके मुख्य दो भेद हैं- १ परमाणु और २ स्कन्धा। इस पदार्थका जो सबसे छोटा कण है- जिसका और विभाग (खण्ड) हो ही न सके, उसका नाम परमाणु (Atom) है। स्कन्ध (Molecule) उसे कहते हैं जो दो या दोसे अधिक परमाणुओंका पिण्ड है।

स्कन्धसे परमाणु बनना व परमाणुओंसे स्कन्ध बनना यह इस पदार्थमें पूरन-गलन-बनना-भिटनाकी किया सदा चलती रहती हैं, अतः इसका ' पुद्गल ' यह नाम अत्यधिक सार्थक है। यह पुद्गल सर्व विश्वमें भरा हुआ है। क्या इमारतें, क्या नगर, क्या ग्राम, क्या मोटरें, क्या गाड़ियाँ, क्या पर्वत ईत्यादि जो भी आँखोंसे दिखते हैं वे सब पुद्गल स्कन्ध हैं। हमारे आपके जो शरीर दिखते हैं वे भी पुद्गलके अनेकों कणोंसे बने हुए पुद्गल स्कन्ध हैं। हम आप तो जीव हैं, अमूर्त हैं, सूक्ष्म हैं अतः आँखोंसे नहीं दिखते। शब्द, छाया, प्रकाश आदि भी पुद्गल हैं जिन्हें आजकल यन्त्रों द्वारा पकड़कर रेडियो-टेलिहिजन-रिकार्ड आदिमें प्रगट किया जाता है या ग्रामोफोन, रेकार्ड या टेपरेकार्ड आदिमें भरा जाता है। पाँचो ईन्द्रियों द्वारा पुद्गल जगत्के ग्रहणका (जानने देखनेका) व्यापार देह-भीतर बैठा हुआ देही (आत्मा) करता रहता है। पंचेन्द्रियोंके विषय (ग्रहण योग्य वस्तुएँ) पुद्गल ही हैं। इस जगत्के कुछ पुद्गल तो आँखोंसे दिखाई पड़ते हैं और कुछ पुद्गल ऐसे हैं जो आँखोंसे दिखाई नहीं देते, पर अन्य ईन्द्रियोंसे उनका ग्रहण होता है, जैसे शब्द, गन्ध, हवा आदि। इस प्रकार संक्षेपमें पुद्गलका वर्णन किया गया है। जगत्में जीव कितने हैं ? और पुद्गल कितने हैं ? जगत्में जीव अनंत हैं और पुद्गल अनंतानन्त हैं।

अब आकाश (Space) के बारे में देखें-जैसे पुद्गल अजीव द्रव्य है ऐसे ही आकाश भी अजीव है। आकाश सर्वत्र अनंत व्याप्त है। किसी भी दिशामें कभी भी आकाशका अन्त नहीं आता। इस अनंतानन्त महा आकाशमें सर्वत्र ही जीव व पुद्गल नहीं हैं, बल्कि इस अनंतानन्त

आकाशके मध्यमें एक सीमित आकाशक्षेत्रमें ही जीव व पुद्गलोंका निवास है। सर्वज्ञपरमात्माओंने (सर्वज्ञयोगीश्वरोंने) विश्वको सम्पूर्ण जानकर यह विश्व-रहस्य जगत्में प्रगट किया। आकाशके जितने विभाग में जहाँतक जीव, पुद्गल आदि सभी द्रव्य पाये जाते हैं उतने आकाशको ' लोकाकाश ' कहा। इस लोकाकाशके बाह्यमें सर्वत्र जो अनंत आकाश है वह मात्र शुद्ध आकाश हैं। इसे ' अलोकाकाश ' नामसे कहा जाता है। इसमें न जीव पाये जाते हैं और न पुद्गल आदि द्रव्य। आकाश सर्व द्रव्योंको अपनेमें स्थान देता है-अवकाश देता है। सबको अपने गर्भमें स्थान देकर अन्तरहित है। यह सर्वत्र व्याप्त महा-अतिमहान् द्रव्य है।

अजीव में पुद्गल और आकाश दो जाने गये। अब और आगे बढ़ो विश्वको जाननेके लिये। आकाशक्षेत्रमें जीव और पुद्गल जब गमन करनेमें तत्पर हों तब उनके गमनमें सहायक एक द्रव्य है। इसे आधुनिक वैज्ञानिक ' ईथर ' (Ether) कहते हैं। इसे एक विशिष्ट नाम मिलता है प्राचीनातिप्राचीन शास्त्रों में सर्वज्ञकी वाणी में, वह नाम है ' धर्मद्रव्य '। यह धर्मद्रव्य अलोकाकाश में तो नहीं है, मात्र लोकाकाशमें ही इसकी व्याप्ति है। यह लोकाकाश-व्याप्त अखंड एक द्रव्य है; अमूर्त है।^१ यह द्रव्य न होता तो जीव और पुद्गल गमना-गमन, स्थानान्तर, हलन-चलन आदि न कर पाते। सब कुछ जहाँ के वहीँ चुपचाप रह जाते। न आदमी चलते-फिरते; न गाड़ियाँ चलती; न रेडियो सुनायी देते। यह जहाँतक आकाशमें पाया जाता है वहीँतक जीवों का एवं पुद्गलके परमाणुओंका व स्कन्धोंका अस्तित्व पाया जाता है।

तीन अजीव द्रव्योंकी कहानी सुनी तुमने। अब चलो आगे बढ़ो। चौथा अजीव द्रव्य कौन-सा है ? ऊपर जो, ' धर्म द्रव्य ' बताया न, उसके ठीक उल्टे स्वरूपवाला एक द्रव्य है जिसे कहते हैं ' अधर्म द्रव्य '।

१. जिस प्रकार मछलीके गमनमें जल हठात् प्रेरणा नहीं करता, किन्तु स्वयं मछली गमन करनेमें तत्पर हो, तब वह उदासिन रूपसे सहायक बन जाता है, उसी प्रकार जीव, पुद्गल, शब्दों आदिके गमनमें धर्म द्रव्यको समझना।

आजके वैज्ञानिक ' ईथर ' (Ether) को मानने लग गये अर्थात् धर्म द्रव्यको मानने लग गये (मानना ही पड़ा) परंतु अभी इस अधर्म द्रव्यको पूर्णरूपसे नहीं मान रहे हैं । हाँ, कुछ वैज्ञानिकोंकी कल्पनामें अब एक बात आने लगी है और वे अभी उलझन (Hesitation) में हैं कि यदि ' ईथर ' के उल्टे स्थिरताके लिए सहायक भी एक अन्य द्रव्य (Anti-ether) न माना जाय तो जीव व पुद्गल नित्य-निरन्तर ही चलायमान रहेंगे, स्थानान्तर ही करते रहेंगे, गमना-गमनसे कभी एक क्षण मात्रके लिये भी स्थिर ही न रह सकेंगे और दुनियाँमें इस प्रकार एक बड़ा गजब छा जायगा । किन्तु देखा जाता है स्पष्टतया कि जैसे जीव (Soul) और पुद्गल (Matter) गतिशील (Moving) होते हैं वैसे स्थितिशील (Stable) भी होते हैं । चूँकि उनकी गतिशीलतामें एक अद्रश्य द्रव्य (Invisible substance) सहायक है ही, वैसे ही उनकी स्थितिशीलतामें उदासीन सहायक उसके विरुद्ध और एक अद्रश्य द्रव्य लोक-नभमें व्याप्त है, यह मानना पड़ेगा । सर्वज्ञ योगीश्वरोंने-उन अनंतज्ञानवान् परमआत्माओंने-परमात्माओंने इसे एक स्वतन्त्र द्रव्यके रूप में देखा है । विज्ञान कल तक ' धर्म द्रव्य ' को नहीं मानता था, शब्दको पुद्गल नहीं मानता था, जलकी एक बूँदमें असंख्यो जन्तु हैं, यह नहीं मानता था, वनस्पतिमें क्रोध, हास्य, आनन्द आदि भावनाधारी आत्मा वास करती है, यह नहीं मानता था, आदि कहाँतक बतावें । किन्तु सर्वज्ञ प्रभुकी त्रिकालाबाधित वैश्विक सत्य वाणीमें आयी हुई ये बातें विज्ञान आज धीरे-धीरे मानने लग ही गया । अगर विज्ञान सच्ची-सच्ची तरक्की करेगा तो एक दिन जरूर ही इस ' अधर्म द्रव्य ' (Anti-ether) को भी उसे मानना ही पड़ेगा । यह अधर्म द्रव्य भी मात्र लोकाकाशमें ही पाया जानेवाला एक अखंड अमूर्त द्रव्य है । परंतु स्थितिमें उदासीन हेतु है, प्रेरक नहीं ।

पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश इन चार अजीब द्रव्योंको जाना । अब एक अजीब द्रव्य रह गया । बढ़ो आगे । लो उसकी भी कहानी सुनो । इस अजीब द्रव्यका नाम है ' काल ' (Time) । यह भी लोक-आकाशमें व्याप्त अमूर्त द्रव्य है परंतु यह अखण्ड एक द्रव्य न होकर लोक-

आकाशके प्रत्येक प्रदेश पर एक-एक कालाणु रूप स्वतन्त्र द्रव्य है। प्रदेश माने ? प्रदेश माने आकाशके जितने क्षेत्रको एक पुद्गल परमाणु (Ultimate atom) रोक देवे-व्यापे उतने सबसे छोटे आकाश-क्षेत्रको ' प्रदेश ' कहते हैं। लोक-आकाश असंख्यातप्रदेशी है और अलोक आकाश अनंतप्रदेशी है। लोकाकाशके प्रत्येक प्रदेश पर जो एक-एक काल-अणु है वह उस प्रदेशमें स्थित जो भी जीव या अजीव द्रव्य हो उसके परिवर्तन में बाह्य सहायक है। इस प्रकार काल-अणु असंख्यात हैं। ये निश्चयकालद्रव्य हैं। महीना, वर्ष, दिवस, रात्रि, युग, मिनट, सेकण्ड, क्षण, समय आदि व्यवहारकालद्रव्य कहे जाते हैं। कालका सबसे छोटा अंश ' समय ' कहलाता है, समयसे छोटा काल-द्रव्यका अंश कोई नहीं है। इस द्रव्यको आधुनिक वैज्ञानिक भी मानते हैं। " Time and space " नामक एक बहुत बड़े ग्रन्थ में इसका उनके द्वारा बहुत विचार किया हुआ पाया गया। परंतु धर्मग्रन्थोंमें खासकर जैन धर्मग्रन्थोंमें इसका अति सूक्ष्म एवं विशद वर्णन मिलता है, जिनपर जर्मन तकके प्रकाण्ड विद्वान् वैज्ञानिक मुग्ध हैं। इन ग्रन्थों में विश्वके समस्त ही द्रव्योंका एवं विश्वके अन्तर्बाह्यस्वरूपका अत्यन्त सूक्ष्म वर्णन मिलता है जो वैज्ञानिक ढंगसे भी खरा उतरता है।

सर्वज्ञ एवं वीतरागी योगीश्वरोंकी यह अभिव्यक्ति होने से इसमें त्रुटि की संभावना हो ही नहीं सकती, क्योंकि वीतराग माने राग-द्वेष-मोहरूप आत्माकी अशुद्धता को पारकर शुद्ध दशाको प्राप्त हुए और सर्वज्ञत्व को प्राप्त हुए परम-आत्मा, उन्हें असत्य कहनेका कोई प्रयोजन नहीं हो सकता। तात्पर्य यह कि सर्वज्ञ व वीतराग योगीश्वरोंके कथनमें असत्य नहीं रह सकता।

छहों द्रव्योंके अतिरिक्त सातवां कोई भी द्रव्य विश्वमें तीनों कालोंमें कभी भी नहीं पाया जाता। सोचकर देखो खूब। क्या एक भी नया द्रव्य दिखा सकोगे ? असम्भव। द्रव्य ये छह ही सदैव पाये जाते हैं। काल अनादि अनंत है। इन छह द्रव्यमय विश्व भी अनादि है, अनंत है। कभी भी ये द्रव्य पाँच नहीं बनेंगे, न सात। सदा ही छह रहेंगे-जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश व काल। इनमें जीव के अतिरिक्त अन्य

पाँच द्रव्य अजीव हैं, अचेतन हैं। इन छहों द्रव्योंमें पुद्गल द्रव्य ही मूर्तिक हैं-रूपी है-स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाला है, शेष पाँच द्रव्य अमूर्त-अरूपी-स्पर्शादिविरहित है। जीव अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतशक्ति, अनंत आनन्दवाला है। पुद्गल-स्पर्श, रस, गन्ध, वर्णवाला है। धर्मद्रव्य-गतिहेतुवाला है। अधर्मद्रव्य-स्थितिहेतुवाला है। आकाशद्रव्य-अवकाशदानहेतुवाला है और कालद्रव्य-परिवर्तनहेतुवाला है। स्वभावतः प्रत्येक द्रव्य अनंत गुणोंका पुंज है लेकिन यहाँ उन द्रव्योंके प्रधान गुण बतलाये गये हैं।

प्रत्येक द्रव्य प्रतिक्षण हालत बदलता रहता है। (Modifications), किन्तु द्रव्यका नाश कालत्रयमें कभी भी, कहीं भी, किंचित् भी नहीं होता है। यह वैश्विक सिद्धान्त ही है कि जो सत् है- अस्तित्ववान् है (Existing) है उसका विनाश कभी भी नहीं होता और जो असत् है (Nonexisting) अस्तित्व में है ही नहीं, उसका उत्पाद कभी भी नहीं होता। अस्तित्ववान्की मात्र हालतें बदलती रहती हैं। प्रतिक्षण हालत न बदले, एक-सी रहे ऐसी कोई वस्तु ही नहीं हो सकती। कारण कि हालतें न बदलें, एक-सी रहें ऐसा कूटस्थनित्य वस्तुका स्वभाव नहीं हो सकता, न ऐसी वस्तु रह सकती है। सत्का नाश नहीं, असत्का उत्पाद नहीं। यही आज का विज्ञान भी कह रहा है। धर्मग्रन्थ तो विश्वके पदार्थोंकी सत्यस्थिति ही तो बताते हैं। विज्ञान उन्हीं धर्मग्रन्थोंकी एक-एक बात को सिद्ध कर दिखा रहा है। इन द्रव्योंको किसीने भी बनाया नहीं है। ये द्रव्य अनादिसे स्वयं सिद्ध हैं और अनंतकाल तक रहेंगे। इनकी हालतें मात्र बदलती रहती हैं और यह संसार हम देखते हैं कि इन्हीं द्रव्योंका बदलती हालतोंकी दौड़धूप-उछल-कूदरूप सारा समूह है। अब यहाँ यह देखना है कि इनमेंसे जीव मुक्त (परम आत्मा) होनेके बजाय संसारी दशामें ही क्यों अटका पड़ा हुआ है और उससे स्वतन्त्र क्यों नहीं होता है।

संसारी प्राणी आत्मासे भिन्न परद्रव्योंको अपना माननेकी महा भूल करता आ रहा है और इसीलिये वह फिर-फिर परद्रव्योंसे ही बद्ध होता जा रहा है। परद्रव्य कौन-कौन-से ? पुद्गलके सर्वपरमाणु व

स्कन्ध परद्रव्य हैं यह एक द्रव्य हुआ। धर्म, अधर्म, आकाश व काल ये चारों भी परद्रव्य हैं। ये पाँच द्रव्य हुए। 'स्व' से अन्य समस्त जीव भी परद्रव्य ही हैं। यों छहों द्रव्य हुए। तात्पर्य- 'स्व' से अन्य सर्व ही षट्द्रव्य 'स्व' की अपेक्षा पर हैं। अतः प्रत्येक जीव स्वतन्त्र है। अनादिकाल से कोई भी जीव, किसी भी अन्य जीवका न हो सका, न है, और न भविष्य में अनंतकालमें भी कभी हो सकेगा। हाँ, एक जीवन में- एक देहनिवास में कुछ जीवोंका कुछ सम्बन्ध अवश्य आ जाता है, जो परस्पर नाते-रिश्तेके रूपमें माना जाता है, किन्तु वस्तुतः प्रत्येक जीव और उसका कर्म स्वतन्त्र ही है। एक मनीषीने कहा है कि-

आप अकेला अवतरै, मरे अकेला होय ।

यों कबहूँ इस जीवको, साथी-सगा न कोय ॥१॥

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय ।

घर सम्पत्ति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय ॥२॥

जहाँ बिलकुल सजातीय द्रव्यरूप अन्य जीव भी किसी जीवका नहीं है वहाँ अत्यन्त विजातीय जो पाँच अजीव द्रव्य, वे जीवके कैसे हो सकते हैं। कदापि नहीं हो सकते। सर्वज्ञ ईश्वरने एक महान् विश्वसत्य विश्वमें प्रगट किया-कि जीव कभी भी-त्रिकालमें भी कहीं भी अजीव नहीं बन सकता एवं अजीव कभी भी-त्रिकालमें भी जीव नहीं बन सकता। न कभी वस्त्र जीव बनेगा और न जीव कभी वस्त्र बनेगा। इतना ही क्यों? कोई भी एक द्रव्य-चाहे वह जीव हो या जड़, स्वद्रव्यपनका-स्वअस्तित्वका त्याग कर किसी भी अन्य द्रव्य रूप नहीं बन सकता, अपार प्रयत्न करने पर भी। स्वयं मुक्तजीव भी-परमेश्वर भी द्रव्य का द्रव्यान्तर करनेमें असमर्थ है। इस प्रकार यह बात सामने आती है कि प्रत्येक जीवके लिये उससे अतिरिक्त समस्त षट् द्रव्यराशि पर है।

प्रत्येक द्रव्य अनंत गुणोंका पुंज है-अनंतानन्त पर्यायोंका (प्रतिक्षण बदलती हालतोंका) त्रैकालिक पुंज है। वह अपने ही गुण-पर्यायोंका सर्वकालीन स्वामी है, परद्रव्यका या परद्रव्यके गुणपर्यायोंका स्वामी कदापि नहीं है। जीवद्रव्य यों अपने ही अनंत ज्ञानादि गुणों का स्वामी हैं परंतु 'पर' को अपना मानने से आकुलित हो रहा है और

इसीलिये फिर देहग्रहण, देहत्यजनरूप उलझनोंमें उलझता ही जाता है। देह भी पर है ही क्योंकि वह पुद्गलके अनेक परमाणुओंका संग्रह है। वाचा (शब्द) भी पौद्गलिक है क्योंकि बोलनेकी इच्छा आत्मा में उत्पन्न होने पर शब्दरूप बनने की योग्यता वाले भाषीय पुद्गलकण शब्दरूप परिणत हो जाते हैं- शब्दायमान हो जाते हैं। अतः देह एवं भाषा ये दोनों भी शुद्धात्मासे भिन्न हैं-पर हैं। ये जो जगत् के समस्त परद्रव्य हैं ये तीन कालमें भी कभी 'स्व' के हो नहीं सकते। कोई भी द्रव्य किसी भी अन्य द्रव्यका हो नहीं सकता। इस सिद्धान्तको स्वचतुष्टय तथा परचतुष्टय रूपसे अच्छी तरह समझा जा सकता है। कोई भी एक द्रव्य-चाहे कोई भी जीव हो या चाहे कोई भी अजीव हो-सदा ही 'स्वद्रव्य' रूप ही है 'स्व' क्षेत्र में ही अर्थात् स्वप्रदेशो में हो-स्वअस्तित्वमें ही है, 'स्व' पर्यायोंमें ही है तथा 'स्व' गुणसमूह स्वरूप ही है अर्थात् स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल-भावमें ही है। सिद्धान्त यह है कि कोई भी एक द्रव्य इस प्रकार स्वद्रव्य, स्वक्षेत्र, स्वकाल और स्वभावरूप (स्वचतुष्टयरूप) से ही त्रिकालमें है और परद्रव्य, परक्षेत्र, परकाल, परभावरूप त्रिकालमें भी नहीं है। अर्थात् कोई भी द्रव्य तीन कालमें कभी भी 'स्व' से अन्य किसी भी परद्रव्यरूप नहीं बन सकता, स्वक्षेत्रसे अन्य किसी भी परद्रव्यके पर क्षेत्ररूप अर्थात् परद्रव्यके प्रदेशस्वरूप-परअस्तित्वरूप नहीं बन सकता, स्वद्रव्यके पर्यायोंसे अन्य किसी भी परद्रव्यके पर्यायोंरूप नहीं बन सकता, एवं स्वद्रव्यके गुणोंसे भिन्न किसी भी परद्रव्यके गुणसमूहरूप नहीं बन सकता। तात्पर्य-निश्चयसे विश्वमें कोई भी द्रव्य त्रिकालमें ही स्वचतुष्टयरूपसे ही है और परचतुष्टयरूपसे नहीं ही है। अहो ! कितनी महान् तथ्यकी बात है यह। इसीलिये भारतीय महर्षि स्वामी समन्तभद्र महोदयने कहा है कि-

“ सदेव सर्वं को नेच्छेत्, स्वरूपादिचतुष्ट्यात् ।

असदेव विपर्यासान्न चेन्न व्यवतिष्ठते ॥ ”

अर्थात्-सभी द्रव्य स्वरूपादिचतुष्टयसे सत् ही हैं और इसको विपरीत माने परचतुष्टयसे असत् ही हैं इस सत्यार्थतत्त्वको कौन नहीं चाहेगा, अपितु सभी सत्यनिष्ठ चाहेंगे-मानेंगे। यदि इस वास्तविक

तत्त्वको-इस वैश्विक तथ्य (सत्य) को न मानो तो विश्वमें वस्तुव्यवस्था ही नहीं बन सकती और न कार्यकारी हो सकती है। ऊपरकी बातसे अब स्वयं अपनेको भी तो सोचो तो क्या सिद्ध होगा ? यही सुस्पष्ट-प्रस्पष्टतया सिद्ध होगा कि तुम सदैव स्वचतुष्टयरूपसे ही सत् हो और परचतुष्टयरूपसे असत् ही हो। कितनी ऊँची मर्मभरी बात। इसकी गंभीरता में गोता लगाकर स्वानुभव करो प्रिय ! इससे ' स्व ' की उपलब्धि व पर की व्यावृत्ति (भिन्नता) हो सकती है। इससे यह अत्यन्त स्पष्ट सिद्धान्त सामने आ जाता है कि किसी भी एक द्रव्यमें किसी भी अन्य द्रव्यका ' अत्यन्त अभाव ' है। तादात्म्यरूपसे त्रैकालिक परिपूर्ण अभाव है।

आज तक कितने ही शरीर तुमसे मिले और बिछुड़े, पर सोचो तो कोई भी शरीर सदाके लिये तुम्हारा बना रह सका ? किसी देहका एक परमाणु भी आजतक क्या तुम्हारा हो सका ? कितने ही प्राणी तुम्हारे साथ रिश्ते-नाते वाले हुए, पर क्या इनमेंसे कोई एक भी प्राणी तुम्हारा सदाके लिये बना रह सका ? कोई भी तो नहीं रह सका, हमेशा ही यह एक स्वतन्त्र रहा है। निश्चयसे प्रत्येक द्रव्य निज-निजका ही है तीनों काल।

अब यहाँ चार अत्यन्त महत्त्वके वैश्विक (वस्तुस्वरूप सम्बन्धी) सिद्धान्त प्रस्तुत हो रहे हैं। इन्हें मात्र पढ़ो नहीं, सुनो नहीं, लिखो नहीं, या सुनाओ नहीं, प्रत्युत इन्हें अपने हृदयकी गहराईमें टंकोत्कीर्णरूपसे अमर कर दो। सावधान ! ये चारों सिद्धान्त इतने महत्त्वके हैं कि इनका सम्यक् अवधारण यदि कोई कर ले तो वह भव्यात्मा निःसन्देह मुक्त हो जायगा, देहग्रहण (जन्म)-देहत्यजन (मरण) रूप अनादिकालसे ही चले आये हुए झंझटोंसे। लो वे चारों सिद्धान्त-

(१) किसी भी द्रव्यका किसी भी सजातीय या विजातीय अन्य द्रव्यके साथ कालत्रयमें एकत्व नहीं।

(२) किसी भी द्रव्यका किसी भी सजातीय या विजातीय अन्य द्रव्यके साथ कालत्रयमें ममत्व नहीं।

(३) किसी भी द्रव्यका किसी भी सजातीय या विजातीय अन्य द्रव्यके साथ कालत्रयमें कर्तृत्व नहीं।

(४) किसी भी द्रव्यका किसी भी सजातीय या विजातीय अन्य द्रव्यके साथ कालत्रयमें भोक्तृत्व नहीं ।

बस, इनके बारेमें हर रोज ही खूब ! खूब !! खूब !!! चिन्तन किया करो, सुबह, शाम । इन चारों सिद्धान्तोंके अत्यन्त सूक्ष्म मर्ममें उतर पड़नेसे ही तो, लगभग २००० वर्षके प्राचीन कालके एक अनुपम ग्रन्थराजका गम्भीर स्वाध्याय करना परम श्रेयस्कर सिद्ध होगा । यदि उस ग्रन्थराजके मर्मज्ञ किसी अध्यात्परसज्ञ विद्वद्भरसे उस ग्रन्थराजको समझ लिया जाय, तो बहुत ही अच्छा रहेगा । नाम है उसका ' ग्रन्थराज समयसार ' । यह उच्चकोटिका आध्यात्मिक ग्रन्थराज समस्त विश्वके अखिल मानवोंके लिये महाकल्याणकारक एवं मुक्तिद्वारोद्घाटक है ।

अब यह प्रश्न हो सकता है कि जब कोई भी परद्रव्य है; उसका एक परमाणु भी कभी अपना नहीं है, तो इनके बारे में सोचना भी क्यों ? बात सत्य है । इन परके बारेमें सोचना भी ' पर ' कहलाता है, ' परभाव ' कहलाता है । परद्रव्यको सोचनारूप चंचलता यह आत्माकी अशुद्ध दशा ही है । आत्माका वास्तविक शुद्ध स्वरूप है-निर्विकल्प चिदानन्दरूप । अस्तु, सर्व परद्रव्योंके बारेमें सोचना छोड़ दिया और स्वद्रव्यके बारे में ?- ' स्व ' के बारेमें सोचने लग जाँय, तो यह भी शुद्धस्वरूप नहीं है ' स्व ' (आत्मा) के बारेमें चिन्तन करके उसे भी छोड़ना होगा । पर तो त्रिकाल भी अपना हो ही नहीं सकता, लेकिन ' स्व ' तो त्रिकाल ही ' स्व ' है उसके बारेमें सोचना क्या । ' स्व (आत्मा) ' समस्त परद्रव्योंसे भिन्न है किन्तु ' स्व ' ' स्व ' से कभी भी भिन्न नहीं है इस दृष्टिसे वह अच्युत अखण्ड स्वरूप है । तो ' स्व ' के बारेमें संकल्प-विकल्प करना यह क्यों ? हाँ, समस्त परपदार्थों से ' स्व ' की भिन्नता, चिन्तनसे देखनेके बाद, पूर्णशुद्ध ' स्व ' के स्वरूपका चिन्तन करनेके लिये प्रथम कुल विकल्प उठाने पड़ते हैं । इसके बाद उन्हें भी छोड़कर निर्विकल्प सहज ' स्व ' अस्तित्वमें आनन्दरूप विश्राम किया जाता है, निज अनुभवरसलीन-निजानन्दरसलीन रहा जाता है, यही आत्माकी शुद्ध दशा है, अन्य सभी निश्चयतः अशुद्ध दशा है । अतः देह व भाषाके समान ही विकल्प या विचार या मानसलहरी यह सब भी परवस्तु माना

जाता है।

आत्मा के परिणाम तीन प्रकार के होते हैं- १) अशुभ, २) शुभ, ३) शुद्ध। अशुभ परिणामोंको पाप, अधर्म तथा अन्याय कहते हैं। शुभ परिणामोंको पुण्य या सुकृत् कहते हैं और अशुभ व शुभ भावोंसे रहित मात्र सहजनिर्मल स्वपरिणामोंको शुद्ध कहते हैं। इन शुद्ध परिणामोंमें परिणामते रह जाना यही आत्माकी शुद्ध दशा है। इसीको प्राप्त करना हम सबका लक्ष्य है और होना ही चाहिए। सच पूछो, तो विश्व भरमें अपने लिए यही बात उपादेय है अन्य सब हेय है। इसे ही दूसरे शब्दोंमें-स्वानुभव, स्वसंवेदन, स्वात्मानुभूति, शुद्धचैतन्य, निर्विकल्प-समाधि, आत्मदर्शन, आत्मसाक्षात्कार आदि किसी भी नामसे कहो। यह अभ्याससे एवं दृढ़ साधना, नित्य साधना, सतत भेदविज्ञान, परम-पुरुषार्थ करते रहनेसे ही प्राप्त हो सकता है। इस शुद्ध दशाके व्यक्त होने पर साधककी निम्न दशा या सांसारिक दशा अधिक काल तक नहीं रहती।

सर्वप्रथम अशुभ भावों को छोड़कर शुभ भावोंमें-पुण्य कार्योंमें प्रवृत्ति करना पड़ती है, क्योंकि अशुभ सर्वथा हेय है। यथार्थमें बात यह है कि अशुभका परिवर्जन हुए बिना शुद्धत्वकी प्राप्ति नहीं हो सकती। अतः अशुभ का परिवर्जन करनेके लिए शुद्ध स्वानुभूतिके अतिरिक्त कालमें कुछ शुभ कार्य-भगवत्पूजा, गुरुभक्ति, स्वाध्याय, ध्यान, सभा, संस्था-संचालन, संगीत आदिका भी अवलम्बन करना पड़ता है, परंतु लक्ष्य तो शुद्धत्व प्राप्ति ही होना चाहिये। अशुभ व शुभ दोनों ही इस शुद्धकी दृष्टिसे हेय हैं, किन्तु अशुभको टालनेकी अपेक्षा शुभकार्यको बहुत बुरा नहीं कहा है। तात्पर्य ऐसा है कि शुद्धत्व सर्वथा उपादेय (ग्राह्य) है। अशुभत्व सर्वथा हेय (अग्राह्य) है। और शुभत्व ? हाँ, शुभत्व तो अशुभत्वके परिहारकी अपेक्षा उपादेय (ग्राह्य) है किन्तु शुद्धत्वरमणकी अपेक्षा हेय (अग्राह्य) है। मतलब यह निकला कि शुभ कथंचित् (किसी अपेक्षा) उपादेय व कथंचित् हेय है। परंतु लक्ष्य शुभका नहीं रहेगा, लक्ष्य तो शुद्धत्वका ही रहेगा। शुद्धत्वकी अपेक्षा शुभ-अशुभ दोनों ही अशुद्धत्वकी कोटिमें आते हैं यह सब अच्छी तरह

समझकर जो शुभ कार्योंका आश्रय लेते हैं वे शुभमें ही अटक नहीं जाते, बल्कि हमेशा शुद्धोन्मुख ही रहते हैं तथा शुभ भी छूट जाय और शुद्ध दशामें रहे, ऐसा ही सदैव चाहते हैं ।

बहिरात्मा, अन्तरात्मा, परमात्मा ये आत्माके तीन प्रकार हैं । आत्मासे भिन्न परद्रव्योंको अपना माननेवाला, देह व आत्मा को एक माननेवाला है बहिरात्मा । भेदविज्ञान हो जाने पर जब यह आत्मा समस्त परवस्तुको पर ही मानता है, समस्त पर-द्रव्यों व समस्त परभावोंको पर ही मानता है तब यह है अन्तरात्मा । अन्तरात्मा अधिकतर स्वात्मरमण ही चाहता है और जितना बने स्वशुद्धत्व पानेमें ही, आत्मस्थिति करनेमें ही लगा रहता है, इससे भिन्न कालमें अशुभ परिहारार्थ शुभ कर्तव्योंका आश्रय करता है । अपनी शुद्ध दशाका अनुभव बारम्बार करनेके इन संस्कारोंकी जिस किसी जीवनमें अपेक्षित पूर्ण विजय होती है । जब जीव अखण्ड रूप ही से स्वशुद्ध दशामें रह जाता है, सतत निजानन्द रस का पान करता है तब यही अन्तरात्मा, परम-आत्मा याने परमात्मा कहलाता है । अब तक बताई गई इन सब बातोंको बहुत ही गहराईसे एवं निर्दोष रीतिसे निःसन्देह जानकर सर्व परद्रव्यों एवं परभावोंसे पृथक् स्वशुद्ध एकत्व अखण्डत्व दशाका दर्शन करना, उस शुद्धज्ञानघन निजात्माका दर्शन करना यह निश्चय सम्यग्दर्शन है-निश्चय सत्य है-वास्तविक श्रद्धान है जो प्रशंसनीय है । संक्षेपमें ही यह कथन करनेका यहाँ प्रयत्न किया गया है । वैसे इसे विस्तारके साथ जाननेके लिए द्रव्यसंग्रह, ग्रंथराज समयसार आदि विशाल अर्थभरे ग्रंथराजोंमें गंभीर मज्जन आवश्यक है । परंतु यदि कोई सूक्ष्म विचारवंत हो तो यहाँ बतायी गयी इन थोड़ी-सी ही बातोंसे भी बहुत बड़ा लाभ उठा सकता है और अपनी आत्माका उत्थान करके स्वानुभव तक प्राप्त कर सकता है । क्योंकि यहाँ यद्यपि थोड़ेमें ये बातें बतायी गयी हैं फिर भी अत्यन्त मार्मिक एवं स्वानुभवकी प्राप्ति के योग्य ऐसी अत्यन्तावश्यक लगभग सभी बातें इसमें आ चुकी है । प्रिय सत्यान्वेषी ! स्वानुभवकी अतिदुर्दम्य तृष्णा यदि तुम्हें सता रही हो, बेचैन बना रही हो तो यहाँ बतायी गयी इतनी बातें भी तुम्हें स्वानुभूतिके लिए प्रायः पर्याप्त हो सकेंगी

। तो निश्चयसत्यके बारेमें (निश्चयसम्यग्दर्शन के बारेमें) बताया गयी इन बातोंका अध्ययन बहुत सूक्ष्मतासे एवं बहुत तीक्ष्णतासे व अत्यधिक सावधानीसे करो । ऐसी इतनी सावधानीसे इन पुष्टोंका गंभीर स्वाध्याय करोगे तो स्वात्माकी अनुभूति करना तुम्हारे लिए कोई कठिन बात नहीं रह सकेगी ।

निश्चयसत्यका व्यवहारसत्य साधन कैसे ? इस प्रश्नके उत्तरमें यह कहना है कि निश्चय सम्यग्दर्शनके प्रसंगमें सर्व विश्वका और शुद्ध निजात्माका जो यथार्थ निर्णय करना पड़ता है वह शास्त्र और गुरुके आधार या निमित्तसे करें । लेकिन कौन-से शास्त्र और गुरु ? जो सत्य देवके द्वारा कहे गये वचनके अनुसार हों, वे ही सत्य शास्त्र और सत्य गुरु हैं । लेकिन सत्य देव कौन ? विश्वमें परमात्माके जितने भी विभिन्न स्वरूप या प्रकार माने गये हैं उन सभीकी अपेक्षा उनको सत्य मान लें तो क्या हर्ज है ? ऐसा मानना एक निष्पक्ष पवित्रहृदयी और सत्यके पुजारीके लिए उचित नहीं होगा । उसको तो एक सत्य देवका निर्णय करना ही होगा । इसी अभिप्रायको लेकर लगभग दो हजार वर्ष प्राचीन कालमें एक सत्यनिष्ठ परीक्षाप्रधानी भारतीय महर्षिने गर्जना की थी, जिसको निष्पक्ष एकाग्रचित्तसे पढ़ो और हृदयंगम करो ।

**“ तीर्थकृत्समयानां च परस्परविरोधतः ।
सर्वेषामामता नास्ति कश्चिदेव भवेद् गुरु । ”**

- आप्तमीमांसा श्लोक ३

अर्थ-जगत्में धर्मप्रवर्तक देव और धर्मशास्त्र इनमें परस्पर विरोध-मतभेद पाये जानेसे सभी सत्य देव-सत्य आप्त (परमात्मा) नहीं हो सकते, अन्यथा विरोध क्यों हो रहा है, यह निश्चित ही है । हाँ, इनमें कोई एक ही निर्दोष लक्षणवाला सत्य देव-वास्तविक विश्वगुरु-ईश्वर हो सकता है ।

इससे सिद्ध होता है कि परमात्मा (ईश्वर) के विषयमें तो किसीको विरोध नहीं, किन्तु उसके लक्षण (स्वरूप) में विरोध या विवाद अवश्य है । अहो ! इन उद्गारोंमें कितनी निष्पक्ष सत्यनिष्ठा के दर्शन होते हैं । ऐसी ही महती निर्भय निष्पक्ष सत्यनिष्ठा गौरवास्पद है,

प्रशंसनीय है। ओ बुद्धिजीवी मानव ! सब ही प्रकारके पक्षव्यामोहको छोड़ दो। विश्वके समस्त धर्म, पन्थ, सम्प्रदाय, मजहब आदि-आदि सभीसे पक्षापातरहित हो जाओ। निर्भय हो यह साहस कर लो कि निर्भय और निष्पक्ष बने बिना सत्यकी प्राप्ति नहीं हो सकती। भय मत करना सत्यके मार्गपर। सदा जीवनमें निर्भय, निःशंक और निष्पक्ष बनो।

श्री हरिभाऊ उपाध्यायजीने भी प्रायः इसी तरहके अपने भाव ' हिन्दुस्तान ' के दीपावली विशेषाङ्कमें अपने लेखमें प्रगट किये थे। उन्हींके शब्दोंमें उनके उद्गार यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं। ध्यानसे पढ़िये-

“ मनुष्य-जीवनमें एक-न-एक समय ऐसा आता ही है, जब उसके मनमें यह प्रश्न उठता है कि मैं कौन हूँ, कहाँसे आया हूँ, अन्तमें मुझे कहाँ जाना है- जीवनका अन्तिम उद्देश्य या ध्येय क्या हैं, जिसके पा जानेसे वह जीवनकी कृतार्थता अनुभव करता है। सृष्टिकी और मानवजातिकी उत्पत्तिसे लेकर आजतक यह प्रश्न सभीके मनमें उठता है, लेकिन इसका समाधानी उत्तर शायद ही आज तक किसीको मिला हो। जिसकी समझमें, अनुभवमें जैसा आया, उसने वैसा वर्णन किया है। निश्चय ही भिन्न-भिन्न व्यक्तियों, विचारकों, ऋषि-मुनियों, तत्त्वज्ञोंको भिन्न-भिन्न प्रकारसे दर्शन और अनुभव हुआ है, क्योंकि उनके संस्कार, विद्वत्ता, योग्यता, चिन्तन-शक्ति, वातावरण एकसे नहीं रहे हैं। इसीसे उनके दर्शन और अनुभवमें भिन्नता रही है। यह भिन्नता यह भी सूचित करती है कि सबके हाथ, अन्तिम ध्येयके सम्बन्धमें पूर्ण सत्य नहीं लग पाया है। यदि लग पाया होता तो उनमें एक-वाक्यता होती। उसके अभावमें हम दो ही अनुमान कर सकते हैं-(१) या तो पूर्ण सत्य किसीके भी हाथ नहीं लगा, (२) या किसी एक हीके हाथ लगा है। अगर दूसरा अनुमान सही हो तो भी हम यह आत्मविश्वास के साथ नहीं कह सकते कि वह सचमुच किसके हाथ लगा है। इसका निर्णय तो अधिकारी वेत्ता ही कर सकता है। ”

-सामाहिक ' हिन्दुस्तान ' -दीपावली विशेषाङ्क

अन्तमें श्रीमान् सत्यप्रेमी निष्पक्ष हृदयी हरिभाऊजी उपाध्यायने

एक बात कह दी कि- “ इसका निर्णय साधारण आदमी नहीं कर सकता; इसका निर्णय तो अधिकारी वेत्ता ही कर सकता है । ” श्रीमान् हरिभाऊजी जैसे जगत्के अत्यन्त निष्पक्ष सत्याग्रही भद्र महानुभावोंको हम, भारतीय महर्षि स्वामी समन्तभद्रकी संस्कृत दार्शनिक दिव्य रचना ‘ आप्तमीमांसा ’ एवं ‘ रत्नकरण्ड-कश्रावकाचार ’; स्वामी विद्यानन्दकी अनुपम दार्शनिक रचना ‘ आप्तपरीक्षा ’; महर्षि नेमिचन्द्रकी दिव्य रचना ‘ द्रव्यसंग्रह ’ इन रचनाओंके गम्भीर रसास्वादनके लिए वात्सल्यपूर्ण संकेत करते हैं ।

चिदात्मन्:

यदि सचमुच ही तुम सत्यकी और चलनेको कदम उठा रहे हो तो हृदयके तलसे गरज उठो दोनों महामन्त्र-

सत्यके लिए ‘ हाँ ’, असत्यके लिए ‘ ना ’ ।

सम्यक्दर्शनके लिए ‘ हाँ ’, मिथ्यादर्शनके लिए ‘ ना ’ ।

पहले एक काम करो कि थोड़ी देरके लिए, हाँ भाई ! थोड़ी देर लिए विश्वमें माने गये नाना प्रकारके समस्त ही देवोंका, समस्त ही शास्त्रोंका एवं समस्त ही गुरुओंका त्याग कर डालो, हाँ, हाँ, थोड़ी देरके लिये । क्योंकि असत्य-सत्यका निर्णय जब तक हो नहीं पाया है तब तक असत्यमें जीवनको बरबाद करनेके बजाय नास्तिक बने रहना बेहतर है । देखो, सत्यासत्यका निर्णय करनेके बाद सत्य देवकी ही भक्तिमें रंगा हुआ एक भव्य भक्त प्रभुभक्तिके प्रसंगमें कष्टर सत्यनिष्ठासे क्या कह उठा है-

“ जन्मोन्मार्ज्यं भजतु भवतः पादपद्मं न लभ्यं

तच्चेत्सैरं चरतु न च दुर्देवतां सेवतां सः ।

अश्नात्यन्नं यदिह सुलभं दुर्लभं चेन्मुधाऽस्ते

क्षुद्व्यावृत्त्यै कवलयति कः कालकूटं बुभुक्षुः ॥ १४ ॥ ”

अर्थ-हे सत्य प्रभो ! कल्याणच्छुक मानव, जन्मका अर्थात् संसार-परिभ्रमणका विनाश करने वाले आपके ही चरणकमलोंकी आराधना करे । यदि आपके चरणकमल प्राप्त न हो सकते हों तो वह भक्त स्वच्छन्द रह कर ही विचरण कर लेवे, परंतु दुर्देवताओंकी- असत्य

देवोंकी सेवा-भक्ति न करे। ठीक ही तो है- कोई भुखा व्यक्ति यदि अन्न सुलभ है, तो उस अन्नका तो सेवन करेगा, परंतु यदि अन्न दुर्लभ हो, तो भूख मिटानेके लिये कालकूट हलाहल- विषको कौन खायेगा ? अर्थात् कोई भी बुद्धिमान् नहीं खायेगा ? उसका खाना प्राणघातक और हानिकारक है।

तात्पर्य-सत्य देव कौन है ? इसका जबतक निर्णय नहीं होता, तबतक भक्तिके लिए असत्य देवोंकी भक्ति करना व्यर्थकी बात है- हानिकर है, उससे तो भक्ति नहीं करना अच्छा है। कारण कि असत्य देवोंकी भक्तिसे कल्याण तो होगा नहीं, परंतु हाँ, अकल्याण जरूर होगा। अतः स्वैराचारी नास्तिक बने रहना बेहतर है, पर बिना सत्य देवके निर्णयके असत्य देवोंकी भक्तिमें कभी भी जीवनको बरबाद करना अच्छा नहीं है और न करना भी चाहिये। यह भाव उक्त श्लोकसे झलकता है। सचमुच कितनी मौलिक और मार्मिक बात है यह।

तो करो निर्णय भगवान्के सत्य स्वरूप का। देखो-भगवान्का सत्य स्वरूप तो एक ही होना चाहिये; दो या दोसौ नहीं और जो सत्य स्वरूप निर्णीत हो, उसी स्वरूपसे सम्पन्न सब ही सत्यनिष्ठोंका भगवान् होना चाहिये, उसमें कोई बदल या फर्क नहीं होना चाहिये, न अपने मनोरंजन या कल्पनाके लिये किसीको बदल भी करना चाहिये। अब प्रश्न उपस्थित हो जाता है कि विश्वके सभी सत्यनिष्ठ मानव निष्पक्ष दृष्टि से सत्य देव किसे मानेंगे ? उत्तरमें कहा जा सकता है कि वे सत्य देव उसीको निर्णीत करेंगे कि जिसमें रंचमात्र भी राग-द्वेष, मोह आदि दोष न हों। अगर उस देवके अन्तर्बाह्य स्वरूपमें कहीं भी कभी भी राग-द्वेष, आदि दोषोंका कोई लेशांश भी पाया जाना सिद्ध हो जाय तो वह सत्य देव नहीं कहा जायगा। अन्तर्बाह्य सर्व दोषोंसे रहित ऐसे सत्य भगवान् की एक मनोज्ञ मूर्ति अपनी आराधनाके लिए बनाकर यदि कोई भक्त परमात्म-भक्ति करना चाहे तो उस मूर्तिमें अपनी तरफसे वह कही रंचमात्र भी दोषका निर्माण न करे, बल्कि उसे अन्तर्बाह्य सम्पूर्ण दोषरहित हो रहने देवे।

यहाँ एक प्रश्न मनमें खड़ा हो सकता है कि सत्य भगवान्की

अन्तर्बाह्य सम्पूर्ण दोषरहित एक मनोज्ञ मूर्ति अपनी ध्यान-आराधनाके लिए बनाई जावे तो कैसी बनाई जा सकती है ? इस प्रश्नका उत्तर आगे चलकर भगवान्‌के सत्य स्वरूपका पूरा निर्णय हो जानेके बाद अन्तमें देखना अधिक उचित होगा । अतः उस परमेश्वरके सत्य स्वरूपका पहले निर्णय करें । इस निर्णयमें पहले बात मोटे रूपमें हमने यह देखी कि ईश्वर तो सर्वदोषरहित ही होना चाहिये । अब दूसरी बात सामने आती है कि ईश्वर अल्पज्ञाता भी नहीं होना चाहिये। यदि ईश्वर अल्पज्ञ हो तो पशु-पक्षी, कृमि, कीट, मानव आदि जो अल्पज्ञ संसारी जीव हैं उनमें और परमेश्वरमें अन्तर ही क्या रहा ? विश्वके सभी संसारी जीव अल्पज्ञ हैं और परमेश्वर सर्वज्ञ, यही उन दोनोंमें सुस्पष्ट अन्तर ज्ञानचक्षुके सामने खड़ा हो जाता है, जिससे परमेश्वरकी अलौकिकता-असामान्यता प्रगट हो जाती है । जगत् के जितने भी चेतन और अचेतन पदार्थ हैं उन सब ही को भूत, वर्तमान, भविष्यतकालीन उनकी सब ही अवस्थाओं के साथ क्षणैकमें जो जानता है और सदा ही अपने अनंत चिदानन्दमें अवर्णनीय स्वात्मानन्दमें विभोर रहता है ऐसा जो सर्वज्ञ परमदेव हो वही सत्य भगवान् कहा जा सकता है । अभी तक दो बातें सामने आयीं कि परमात्मा किंचित् भी दोषरहित नहीं होना चाहिए, बल्कि सर्वदोषरहित ही होना चाहिए, यह एक बात हो गई और दूसरी बात यह कि परमात्मा अल्पज्ञ नहीं हो सकता, बल्कि उसे सर्वज्ञ ही होना चाहिए । अब एक तीसरी और आखिरी बात सत्य भगवान् के स्वरूपका निर्णय करते समय सामने आ जाती है उसपर विचार करना योग्य है । भगवान्‌के सत्य स्वरूपका निर्णय करते समय तीसरी जो कसौटी सामने जाती है वह यह कि भगवान्‌के द्वारा दर्शित कल्याणमार्गपर-अनंत आनन्दलाभके मार्गपर जो भी भव्य जीव चलेंगे, सम्यक् श्रद्धापूर्वक चलेंगे, उन सबका कल्याण होना ही चाहिए। किसीका हो, किसीका हुए बिना रह जाय, ऐसा नहीं हो सकता । यदि परमेश्वरके बताए गए मुक्तिपथपर सम्यक् श्रद्धापूर्वक चलने पर भी किसीका ही हित होवे, ऐसा हो जाय तो वह मुक्तिमार्गका नेता सच्चा प्रभु नहीं हो सकता । अतः जिसके बताये गये मार्गपर सम्यक् श्रद्धासे चलनेवाले जो

भी हों उनका हित ही होना होगा ऐसा परमहितो-पदेशकपन-सर्वहितोपदेशकपन जिसमें हो वही सत्य प्रभु हो सकता है। उपर्युक्त तीन बातोंमेंसे अर्थात् सर्वदोषरहिततत्त्व, सर्वज्ञत्व और सर्वहितोपदेशित्व इन तीन विशेषताओंमेंसे एककी भी कमी हो तो वह ईश्वर सत्य सिद्ध नहीं होता, यह बात आधुनिकसे आधुनिक बुद्धिवादी, अत्यन्त प्रखर तार्किक एवं वैज्ञानिक आदि किन्हीं भी विचारवन्तोंको मान्य होने योग्य है। तो सोचो इस बारेमें स्वतन्त्र बुद्धिसे।

अय सत्यके अन्वेषक मानवश्रेष्ठ !

पीछे एक बार हमने एक बातका विचार करनेकी चर्चा उठाई थी कि सत्य प्रभुकी एक आदर्श मूर्ति हमारे ध्यान-आराधनाके लिए बनवाई जाय, तो वह कैसी हो सकती है ? अब यहाँ उसीके विषयमें विचारविनिमय किया जायगा, किन्तु हाँ, इसके लिए बहुत बड़े निष्पक्ष हृदयकी आवश्यकता है। अत्यन्त निष्पक्ष हृदय ही होना होगा, तभी यह बात हृदयंगम हो सकेगी। पूर्व संस्कार के वश रहनेवाले इसका निर्णय करनेमें प्रायः असमर्थ रहेंगे। क्योंकि बाल्यकालसे ही जिस किसी भगवान्की प्रतिमा उनकी आराध्य रही हो उसीके संस्कार उतने बचपन से ही उनके गहरे मानसमें वज्र जैसे मजबूत बने हुए होते हैं। आगे चलकर उस आराध्य में कहीं कोई दोष उपस्थित होता हो और उसमें कोई परिवर्तन करनेकी बात उठाई जावे तो उन पूर्व संस्कारोंसे अभिभूत अशक्त हृदयवालोंको यह बात असह्य जैसी हो जायगी। किन्तु प्रिय सत्यगवेषक ! तुम्हें तो इस विषयमें बहुत ही शान्त हृदयसे-ठण्डे दिलसे सोचना चाहिए समस्त पूर्व संस्कारोंका त्याग करके। सत्य प्राप्तिके लिए यही उपाय है। इसलिए यहीं-इन बातोंको पढते समय ही अभी समस्त पूर्व संस्कारोंरहित एवं प्रशान्त हृदय बनकर ही आगामी चर्चामें स्नेहपूर्वक प्रवेश करो।

जगत्के विविध मानवोंसे निर्मित ईश्वरके अनेकों भेद-प्रभेदोंपर दृष्टिक्षेप किया जाय, तो असंख्यों प्रकारकी मूर्तियाँ नजर आयेंगी। कितने प्रकार, कितने भेद, कितने फर्क, कितनी विभिन्नता। कितने तरहके देव और इतने देवों पर भी तृप्ति न हो पर कितनी तरहकी देवियाँ भी। इन

असंख्यो देव-देवियों के कितने-कितने भिन्न रूप भी । हाँ, कितनी उलझन, कितना झमेला ? इतनी उलझनोंमेंसे, उक्त तीन विशेषताओंके द्वारा वास्तविक ईश्वरके स्वरूपको अत्यन्त सूक्ष्म विचार एवं परीक्षाप्रधान कुशलबुद्धिसे ही निर्णीत किया जा सकेगा । तो अय पूर्वसंस्कार विरहित एवं प्रशान्तहृदयी प्रिय मानव ! चलो अपने सूक्ष्म विचार एवं परीक्षाप्रधान कुशला बुद्धिको लेकर ।

सर्वप्रथम यह सोचो कि भगवान् अधिक-से-अधिक अच्छा हो या थोड़ा-सा अच्छा हो ? शायद तुम झट कह दोगे कि भगवान् तो अधिक-से-अधिक अच्छा ही हो, थोड़ा-सा अच्छा न हो । अरेरे ! यहीं गलती हो गई । कौन-सी गलती ? देखो, ईश्वर थोड़ा-सा अच्छा कभी भी नहीं हो सकता, यह तो ठीक हैं परंतु वह अधिक-से-अधिक अच्छा भी नहीं हो सकता । अरे ! थोड़ा या अधिक अच्छापन क्या लिये बैठे हैं। उस देवाधिदेव परम प्रभुको तो ' पूर्ण अच्छा ' सम्पूर्ण परिपूर्ण अच्छा ही होना चाहिये । उसकी अच्छाईमें रचमात्र भी न्यूनता नहीं होना चाहिये । मतलब यह कि वह सर्वोत्तम जगद्वन्द्य जगत्प्रभु सम्पूर्ण दोषोंसे सम्पूर्ण रहित एवं सम्पूर्ण गुणोंसे सम्पूर्णसहित अर्थात् संपूर्ण ही अच्छा, ऐसा होना चाहिये । तभी वह सत्य भगवान् हो सकता है । हाँ, ऐसा ही भगवान् विश्वके किसी भी मानवका भगवान्-समस्त प्राणियोंका निष्पक्षतासे एकमात्र भगवान् हो सकता है । अहो ! ऐसा सर्वमान्य-सर्वजगत्के लिये कोई भी मतभेद न रहते हुए परम आराधनीय ऐसा एक निर्दोष सत्य देव-देवाधिदेव निर्णीत हो जाय और सबकी समझमें आकर सभी उसीकी आराधनामें लग जायँ तो कितना अच्छा हो । विश्वका मानवमात्र या प्राणीमात्र उस परमप्रभु परमेश्वरके पावन चरणोंमें बैठकर जब भक्तिविभोर हो जायगा तो भेद-भावका सारा मैल धुल जायगा और विश्वशान्ति ऐसे ही उपायोंसे हो सकती है लेकिन परमात्माके स्वरूपके बारेमें इतने अधिक मतभेद हैं कि अपने कुलाचार पद्धतिसे चले आये हुए संस्कार या बाल्यकाल से जिस किसी प्रभुस्वरूपकी आराधनाके संस्कार बने हों उनके विरुद्ध एक अक्षर भी सुनना किसी-किसीके लिये असह्य हो जाता है । इसीलिये ऊपर तुम्हें बतलाया गया था कि अय

सत्यके पुजारी ! तुम्हें बहुत निष्पक्ष हृदय-अत्यन्त प्रशान्त हृदयसे एवं सूक्ष्म तथा कुशल ज्ञानचक्षुसे ही सत्य प्रभुके सत्य स्वरूपका अवलोकन निर्धारण-अवधारण करना होगा । वह सत्य ईशस्वरूप आगमसे, अनुमानसे, अत्यन्त प्रखर तर्कोंसे, प्रत्यक्ष स्वानुभव से किसीसे भी एवं किसी भी तरह बाधित नहीं होना चाहिये । इस अत्यन्त मौलिक एवं मार्मिक बातको इस प्रसंगमें लेशमात्र भी भूलना नहीं चाहिये । चलो अब सूक्ष्म विचारोंके साथ संक्षेपमें उस विश्ववन्द्य परमेश्वरकी नितान्त मनोहर मूर्ति किस प्रकार बनाई जा सकेगी, इस बात पर गौर करें ।

मान लो कि प्रभु के हाथमें बन्दूक और एटम बम है तो क्या समझें ? सत्यनिष्ठ व्यक्तिके हृदयमें यह प्रश्न सहसा खड़ा होगा कि बन्दूक और एटम बमको रखनेकी भगवान्को भी क्यों आवश्यकता हो ? यह तो अल्पज्ञ मानवोंकी और उनमें भी प्रायः युद्धपिपासु मानवोंकी चालें हैं कि वे ऐसे विघातक अस्त्र अपने पास रखते हैं । किन्तु यदि सर्वज्ञ परमेश्वर भी इन झंझटोंमें पड़ जाय तो जगत्के मानवोंसे अधिक उसकी कोई विशेषता या महानता नहीं रहती । इस विषयमें तीन बातें कही जा सकती हैं- (१) कोई कहेंगे कि बुरे जनोंको जला डालनेके लिए-जानसे मार डालने के लिए ईश्वरने एटम बमको व बन्दूकको धारण किया है । (२) दूसरे कोई ऐसा कह देंगे कि ईश्वर किसी भी तरहसे दूसरोंका हिंसक नहीं हो सकता । ईश्वरने तो अपने खुदकी रक्षाके लिए एटम बम तथा बन्दूकको धारण किया है । इन दोनों बातों को न मानते हुए कोई मनुष्य तीसरी बातकी कल्पना प्रस्तुत करे कि (३) परमेश्वरने बन्दूक एवं एटम बमको न किसीकी हिंसा करनेके लिए या न अपनी सुरक्षाके लिए धारण किया है, बल्कि उसने तो अपनी शोभा एवं सुन्दरताके लिए धारण किया है । और भी एक चौथा तर्क दिखाई देता है, उसका विचार आगे करेंगे । उपर्युक्त तीन बातोंमेंसे कौन-सी बात सही है, जरा इसपर अब सोचना शुरु करें । लो पहली बात-वही कि ' दूसरोंको मारनेके लिए ईश्वरने बम व बन्दूकको धारण किया है, तो ऐसे कहनेवाले उस भाईसे तुम्हीं ज़रा गहराईसे सोचकर अपने निष्पक्ष हृदयसे, साफ, दिलसे कह उठोगे कि " भैया ! बुरोंको मार डालना

कोई मानव भी तो कर सकता है और हो सकता है कि दुनिया उसे अच्छा भी कह दे लेकिन परमपवित्र-परमअहिंसामूर्ति सच्चे भगवान्के पास ये अच्छे और ये बुरे, ऐसा द्वैधीभाव-विषमभाव क्या कभी हो सकता है ! देखो, सच्चे परमात्माके पास तो पूर्ण समभाव-साम्यभावकी चरम श्रेष्ठता ही होगी। उसके किये जगत्के समस्त प्राणीमात्र पूर्णतया समान हैं। ऐसा समद्रष्टा सत्य देव किसीकी भी हिंसा क्या करेगा ? हिंसाका कोई भी प्रकार उस परमोच्च प्रभुमें पाया जाने लग जाय तो वह विषमताका द्योतक होगा और जहाँ रंचमात्र भी विषमता होगी वहाँ सच्चा देवपन नहीं हो सकता। कोई भाई ऐसा कह देते हैं कि ईश्वर सभी पदार्थोंमें मौजूद हैं और इसीके साथ यह भी कहते हैं कि वह ईश्वर दुर्जनोंको मार डालता है तो इस बात में कितना परस्पर विरोध आता है। किसी आदमीका किसी आदमीके द्वारा खून हुआ, तो यहाँ क्या ऐसा कहा जा सकता है कि ईश्वरने अपनेको दूसरे ईश्वरसे घात करा डाला ? ऐसा तो नहीं कहा जा सकता। यदि ऐसा कहो कि ईश्वर सभीसे अलग स्वतन्त्र ही है और वह मनुष्य आदिको बुद्धि देकर प्रेरित करता है, तो इसमें भी गड़बड़ी है, कैसे, सो देखो-ईश्वर किसी आदमीको किसी आदमीका खून करनेके लिए प्रेरित करे और बादमें जिसने खून किया उसे न्यायाधीशके द्वारा फाँसीकी सजा दिलवावे और फाँसी देनेवाले नौकरको फाँसी देनेमें प्रवृत्त करे, यह कितनी विषमता। क्या ईश्वरमें ऐसा विचित्र व्यवहार हो सकता है ? अरे कभी नहीं। ईश्वर सभी जीवोंमें मौजूद है इसका मतलब प्रत्येक जीवमें ईश्वर बननेकी सामर्थ्य है। यदि अपनेमें ईश्वरत्वका अंश है, यह पहचान कर कोई जीव परमात्माकी साधना करे तो वह ईश्वरत्वदशाको प्राप्त कर सकता है। प्रत्येक जीव स्वयंके ही भले-बुरे कर्मानुसार सुख-दुःख भोगता है। किसी ईश्वरकी इसके लिए आवश्यकता नहीं। गीता में, प्रखर सत्याग्रही-सत्यनिष्ठके लिए उत्तम दो श्लोक आते हैं। बस, सारा रहस्य वहाँ स्पष्ट ही कर दिया है। उन दो श्लोकोंको भुलाकर गीता पढ़ो तो सब वृथा हो जायगा। कौन-से वे श्लोक ? वे महत्त्वभरे श्लोक ये हैं-

“ न कर्तृत्वं न कर्माणि लोकस्य सृजति प्रभुः ।

न कर्मफलसंयोगं स्वभावरस्तु प्रवर्तते ॥१॥

नाऽऽदत्ते कस्यचित्पापं, न कस्य सुकृतं विभुः ।

अज्ञेनानावृत्तं ज्ञानं, तेन मुह्यन्ति जन्तवः ॥२॥ ”

— (अ० ५)

अर्थ— ईश्वर लोकका कर्ता नहीं, न प्राणियोंके कर्मों को रचता है, न कर्मफल संयोगको करता है किन्तु लोककी प्रवृत्ति स्वाभाविकरूपसे ही हो रही है। वह ईश्वर न किसीके पापको लेता है न किसीके पुण्यको। न उसके फल को देता है। वास्तवमें अज्ञानसे दूषित प्राणिकका वैसा ज्ञान हो रहा है, जिससे कि ये प्राणी परवस्तुओं में मोहित हो रहे हैं। कितनी स्पष्ट बात। अब कोई कह दे कि ऐसा कहना ईश्वरको न मानना है— नास्तिकपन है, तो कहना पड़ेगा कि भैया ! आवेशमें आकर नास्तिक मत कहो। प्रत्येक व्यक्तिमें ईश्वरत्व है। जो उसे स्वयं प्रगट करेगा वही ईश्वरत्व दशाको पा लेगा। इस दृष्टिसे यदि किसीको नास्तिक कहा जाय, तो वह नास्तिक नहीं, आस्तिक है। इसलिए प्यारे बन्धुओ ! बन्दूक और एटम बमको लिये हुए उस सदोष देवको कभी भी—सपनेमें भी सत्यदेव मत समझना। अहो ! सत्यदेव तो पूर्ण रूपसे समतामूर्ति, परम अहिंसामय और सदैव अपने शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें मस्त रहता है, इसलिए अपनी उपर्युक्त कल्पनाको अब तो छोड़ दो।

अब लो दूसरी बात—कोई भाई यह कह दे कि परमेश्वर ने दूसरोंकी हिंसाके लिए एटम बम व बन्दूकको धारण नहीं किया हैं, बल्कि अपनी सुरक्षाके लिए ही उनको धारण किया है। इस बातपर भी सूक्ष्म विचार करनेपर इसकी अयथार्थता ही प्रतीत होगी। उस भाईको हम प्यारसे कहने लग जावेंगे कि हे भाई ! जरा सोचो तो सही कि अपनी सुरक्षाके लिए बम आदि अस्त्र—शस्त्र रखना क्या भयका द्योतक नहीं ? यदि उस परमात्माको भी अभी किसीसे भय हो तो वह तो एक मामूली संसारी प्राणीकी तरह ही भयभीत हो गया। भय अपूर्णता या सशत्रुताका ही निदर्शक है। यदि भगवान्के पास अब भी किसी प्रकारकी अपूर्णता या किन्हीं शत्रुओंसे बैर—विरोध पाया जाय तो वह सत्य भगवान् नहीं कहा जा सकता। सत्य भगवान्को तो सम्पूर्ण निर्भय एवं सर्वशत्रुरहित—अजात बैरी ही होना चाहिए। इसलिए भैया ! सत्यकी आँख खोलकर

परम श्रेष्ठ भगवत्स्वरूपकी यथार्थताको निष्पक्ष-स्वच्छ हृदयसे देख लो और अपनी पूर्वकालीन धारणाओंमें यदि कहीं न्यूनता या त्रुटि नजर आ जाय तो उसे बड़े आनन्दसे एवं साफ दिलसे छोड़नेके लिए भी तैयार हो जाओ ।

अब चलो तीसरी बात देखें-यदि कोई भाई उपर्युक्त दोनों कल्पनाओं को न मानकर ऐसा कहने लग जाय कि “ भगवान्ने एटम बम या बन्दूकको जो धारण किया है वह न किसीकी हिंसा करनेके लिए और न किसीसे अपनी सुरक्षा करनेके लिए, बल्कि उसने इन अस्त्रोंको जो धारण किया है वह मात्र अपनी शोभा और सुन्दरता के लिए ” । ऐसा कहना भी ठीक नहीं बैठता । यदि इस बात पर भी सच्चाईसे विचार करोगे तो तुम्हीं उस भाईसे कहने लग जाओगे कि मेरे प्यारे भैया ! ईश्वरको अभी अपनी शोभा और सुन्दरताकी पड़ी हो तो यह तो गज़बकी बात हो गई । कारण कि सर्वोच्च दशामें पहुँचे हुए उस परम प्रभुको अब भी अपनी शोभा-सुन्दरताकी अभिवाञ्छा हो, यह बात अयुक्त है; क्योंकि यह देवाधिदेव परमात्मा समस्त इच्छाओं-विकल्पोंरूपी शत्रुओं पर विजय प्राप्त करने वाला महाविजेताके पदपर बिराजमान है । आत्माके समस्त गुणोंकी पूर्ण शुद्धतारूप पूर्ण विकास जिसका हो चुका, ऐसा वह परम आत्मा-परमात्मा अपने स्वाभाविक सौन्दर्यसे ही त्रिलोकसुन्दर बना हुआ है, उस पर बाह्य सुन्दरता लादनेकी कोई आवश्यकता नहीं । पूर्ण सत्य स्वयमेव सुन्दर है । महा-मनीषियोंके वे अमृततुल्य उद्गार-“ सत्यं शिवं सुन्दरम् ” क्या उन्हें तुम भूल गये । स्वाभाविकता ही सत्य हैं, शिव है अर्थात् कल्याणमय है और वही वास्तविक सुन्दर है । इसलिये भैया ! ऐसी कल्पनाओंको हम अपने सत्यनिष्ठ हृदयमें स्थान न दें, इसी में हमारा यथार्थ कल्याण निहित है । एक यह भी बात कोई कह सकते हैं कि “ परमेश्वरको अपनी सौन्दर्यवृद्धिको इच्छा नहीं हो सकती है यह तो हमने मान लिया किन्तु हम अपने मनकी तृप्तिके लिये उस पर बाहरसे सुन्दरताको अपने-अपने मनोनुकूल लाद देते हैं ” तो उसको भी कहा जा सकता है कि भाई ! स्वाभाविक सुन्दरता अनुपम है उसमें अपनी तरफसे कोई अस्वाभाविकता उत्पन्न करके क्यों बिगाड़ कर देते

हो। सत्यको अन्तर्बाह्य जैसे-के-तैसे ही रहने दो इसीमें अवर्णनीय सौन्दर्य अबाध रहेगा। अतः यह भी बहाना सत्यका सच्चा पुजारी कभी भी नहीं बनायेगा, तुम भी नहीं बनाओगे। खैर, परमेश्वरके पास बम और बन्दूक होनेके विषयमें तीन-चार कल्पनाओंके अन्तरङ्गमें कितनी निःसारता है यह जान लिया गया। अतः खूब सोचकर सत्यके निष्कर्षपर पहुँच जाओ, इसीमें आत्माका उत्कर्ष निःसन्देह निहित है। अब चलो उस ईश्वरके स्वरूपके सम्बन्धमें और थोड़ी-सी गहराईके साथ देखते चलें-

मान लो कि परमेश्वर में थोड़ा-सा कामविकार है तो क्या सत्यहृदयीको यह मंजूर होगा ? नहीं-नहीं, ऐसा हो नहीं सकता। उस परमेश्वरमें थोड़ा-बहुत नहीं, बल्कि कामविकारका सर्वथा और सर्वदा अभाव ही रहना चाहिये तभी वह सत्य परमात्मा-सत्य प्रभु कहाया जा सकता है। कोई संसारी जीव अपनी दशाओंके समान आदि परमात्माको भी बना डाले तो यह तो उसकी कल्पना के साम्राज्य में ही शोभा देने वाला तथाकथित भगवान् हो सकता है किन्तु सत्य भगवान् नहीं हो सकता। परमात्माको कोई विवाहित बना डाले- पत्नी सहित उसका स्वरूप बना डाले तो कोई क्या करे ? सत्य सेवक तो ऐसे भोलेको कहेगा कि भैया ! तुम्हारे साथ क्या विवाद करते बैठना। तुम्हें तो अपने ही संस्कार अत्यन्त दृढ़ हुए हैं, जिससे घर-गृहस्थी वालों जैसा लौकिक वातावरण सहित भगवान् ही तुम्हें सत्य भगवान् मालूम होता है। लेकिन सत्यके सामने भोलीभाली कल्पनाएँ खड़ी नहीं रह सकती। और भी देखो। भगवान्को सुवर्ण, हीरा, मोती आदिके सुन्दर-सुन्दर आभूषण मनुष्यने पहिनाये या स्वयं भगवान्को ही उनका शौक हैं इस पर भी खूब अच्छी तरह सोच लो। जब तक कोई गृहस्थ दशामें या लौकिक फन्दोंमें है तब तक आभूषण, पत्नी, घोड़ा-गाड़ी आदि सवारी, ऊँचे दरजेके वस्त्रकलाप एवं अस्त्रकलाप आदि उसके पासमें रहना कोई असम्भव बात नहीं, परंतु सारी लौकिक दुर्बलताओंपर महान् विजय प्राप्त करके परमोच्च दशामें पहुँचे हुए उस परम ईश्वरके पास भी ये लौकिक दुर्बलताके द्योतक साधनसमूह दिखाई देवें तो सत्य हृदय पुकारकर कह उठेगा कि नहीं-नहीं, सत्य प्रभु इन दुर्बलताओंका शिकार नहीं हो सकता

। अतः उसका परमोच्च और परमश्रेष्ठ स्वरूप सर्व दोषोंसे रहित रहने देनेमें ही सत्यनिष्ठता है। अय सत्याग्रही ! कल्पनाओंके घोंसलेसे बाहिर आ जाओ। सत्यके अतिविशाल आकाश-प्राङ्गणमें प्रवेश करो और देखो सत्यका वास्तविक सौन्दर्य। सीमित मानव जीवनको असत्य कल्पनाओंमें ही बरबाद करके अन्त में पछतावेमें मत पड़ो। सत्य प्रभुको ही अपने पवित्र हृदय-सिंहासनपर विराजमान करो। कैसा है वह सत्य परमेश्वर ?

(१) जिसमें सारी लौकिक दुर्बलताओंका, समस्त इच्छाओंका, समस्त दोषोंका सम्पूर्ण अभाव है अर्थात् वह बाह्याभ्यन्तर सर्व दोष रहित है।

(२) वह समस्त विश्वको तीनों काल सहित सर्वथा एवं सर्वदा जाननेवाला है-मतलब सर्वज्ञ है और (३) जिसके बताये हुए शाश्वत आनन्दप्राप्तिके मार्गपर चलनेवालेका परम हित हो, ऐसा परमहितोपदेशी है। इस प्रकार परम वीतरागी परमहंस दशामें स्थित देवको ही मात्र देव न कहते हुए देवाधिदेव-देवोंका भी देव-सत्य देव कहा जा सकता है, अन्य सबको जगत्के बहुभाग भोले मानव देव समझते हों तो समझने दो लेकिन वे देवाधिदेव तो नहीं हो सकते। इस विषयको खूब बढ़ाया जा सकता है परंतु प्रिय सत्यान्वेषक ! संक्षेपमें यहाँ सत्यप्रभुस्वरूपकी तरफ इशारा भर कर दिया है। अन्तर्बाह्य नग्न सत्य (नाचकेद तरुतह) को तुम अपनी तीक्ष्ण एवं सूक्ष्म बोधदृष्टिको विस्फारित करके देख सकते हो। तुम्हारा यह लघु जीवन जल्द-से-जल्द सत्यमय बन जाय और तुम्हारा सच्चा कल्याण हो जाय, इस मंगलभावनाके साथ इस प्रकरणको यही समाप्त किया जा रहा है।

एक बार सच्चे देवका निर्णय हो गया, तो फिर सच्चे शास्त्र और सच्चे गुरुका निर्णय होना अधिक कठिन नहीं पड़ता, क्योंकि सच्चे देवकी वाणी जिन शास्त्रोंमें रक्खी गई हो वे सच्चे शास्त्र हैं और उनके अनुसार चलनेवाले जो गुरु हों वे सच्चे गुरु ! इसीलिये हमने सर्वप्रथम सच्चे देवका निर्णय किया। किन्तु नामके बारेमें हमने कुछ सोचा ही नहीं। उस परम प्रभुका नाम कौन-सा लिया जाय ? कोई-सा एक नाम ले लिया जाय तो जिस सम्प्रदायमें वह नाम मुख्य हो उनको तो आनन्द होगा और जिस सम्प्रदायमें उस नामकी प्रधानता न हो उनको थोड़ा-

सा खटकेगा । लेकिन हमें तो ऐसा निष्पक्ष हृदय रखना हे कि उस परमेश्वरका नाम चाहे कुछ भी हो हमें तो सच्चे परमेश्वरपनके लक्षण जिस परम आत्मामें पाये जाँय उसे परमेश्वर मानना हैं । दो-एक महात्माओंके कथन इस प्रसंगमें कितने अच्छे प्यारे लगते हैं । एक ने कहा था:-

भवबीजाङ्कुरजननाः रागाद्याः क्षयमुपागता यस्य ।

ब्रह्मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥

अर्थ-संसार-परिभ्रमणके बीजाङ्कुरोंको उत्पन्न करनेवाले अर्थात् संसारके कारण जो राग-द्वेष आदिक मलिन भाव, वे जिसके नष्ट हो चुके उस परम प्रभुको हमारा नमस्कार, फिर उसका नाम ब्रह्मा हो या विष्णु हो या महेश (हर) हो या जिन (जिनेश्वर) हो । अहो, इस श्लोकमें कितनी निष्पक्षता झलक रही है ।

दूसरे महामनीषीने ईश्वरके मौलिक लक्षणोंका उल्लेख करते हुए देखो कैसे विलक्षण ढंगसे नमस्कार किया है । उन्होंने कहा:-

यो विश्वं वेदवेद्यं जननजलनिधेर्मङ्गिनः पारद्वश्वा

पौर्वापर्याऽविरुद्धं वचनमनुपमं निष्कलङ्कं यदीयम् ।

तं वन्दे साधुवन्द्यं सकलगुणनिधिं ध्वस्तदोषद्विषन्तं

बुद्धं वा वर्द्धमानं शतदलनिलयं केशवं वा शिवं वा ॥

अर्थ- जिसने जानने योग्य अखिल विश्वको जान लिया, जन्ममरण-रूप संसारसमुद्रकी लहरोंसे पार जिसकी ज्ञानदृष्टि पहुँच गई; जिसके वचन पूर्व-अपर विरोधसे रहित, उपमाओं से रहित एवं निष्कलङ्क-निर्दोष हैं, और जो साधु महात्माजनोंसे भी वन्दनीय है-समस्त शुद्ध-पूर्ण शुद्धगुणोंका जो भण्डार है, एवं आत्माके समस्त दोषरूपी शत्रुओंका जिसने परिपूर्ण उच्छेद कर डाला है ऐसे उस देवाधिदेवको-सच्चे भगवान्को मेरा नमस्कार हो । ऐसे गुणवाले उस ईश्वरका नाम चाहे बुद्ध हो, चाहे वर्द्धमान (महावीर) हो, चाहे शतदल-निलय (ब्रह्मा) हो, चाहे केशव (विष्णु) हो, या शिव (शंकर) हो । इस प्रकार हमने देखा कि ईश्वरके नाम कुछ भी हों, पर उसके सच्चे लक्षण जिसमें पाये जाँय वही विश्वके सत्यनिष्ठ मानवका आराध्य देव है

। स्वामी समन्तभद्र, जो एक सुदृढ़ सत्यनिष्ठ महात्मा थे, जो लगभग दो हजार वर्षके प्राचीन कालमें रचित “ देवागमस्तोत्र (आप्त- मीमांसा) ” नामकी एक अमर अपूर्व रचना छोड़ गये हैं। उस ग्रन्थकी दार्शनिक रचनामें मंगलाचरणरूप प्रारम्भके श्लोकमें भगवान् सर्वज्ञको नमस्कार किये जानेकी नवीन पद्धति हम देखते हैं। लेकिन यही एक ऐसा ग्रन्थ दिखता है कि जिसके मंगलाचरणरूप प्रथम श्लोक ही में, अन्य ग्रन्थोकी परम्परा के समान, भगवान्को स्पष्ट शब्दोंमें नमस्कार नहीं किया गया है। वह प्रथम श्लोक इस प्रकार है-

देवागमनभोयानचामरादिविभूतयः।

मायाविष्वपि दृश्यन्ते नाऽतस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

अर्थ- भगवान्से वे कह रहे हैं कि “ देवोंका आगमन, आकाशमें गमन करना, चामर दुरना, छत्र सिंहासन आदि विभूति होना इत्यादि बातें तो मायावी असत्य पुरुषोंमें भी दिखा देती हैं अतः इतनी भर वस्तुओंसे तुम हमारे लिए महान् नहीं हो। ” कितनी सत्यनिष्ठा कि भगवान्को भी नमस्कार करनेके लिए वे झट तैयार नहीं हुए भगवान् की सत्य लक्षणता उसी ग्रन्थमें जब आगे चलकर सिद्ध की है तब ऐसे सत्य ईश्वरको ही आगे चलकर उन्होंने नमस्कार किया है। अहो ! सत्याग्रही मानवोंके लिये ऐसे ही दार्शनिक ग्रन्थोंकी अत्यन्त आवश्यकता है। हम सत्य ही ईश्वरको भजें, पूजें। नामसे हमें क्या मतलब। चाहो तो नाम रखो उनके निरिच्छ, वीतराग, शत्रुञ्ज, अरिघातक, कर्मविजेता, विश्वविजयी, ब्रह्मा, विष्णु, महेश, महावीर, बुद्ध आदि। मुख्य बात यह है कि ईश्वरत्वके सच्चे लक्षण जिसमें पाये जायें वह हमारा आराध्यदेव है। नामको लेकर लड़ने-झगड़ने बैठना बच्चोंकी सी बात है-जो मानवोंको शोभा नहीं देती। देव, शास्त्र, गुरु ये प्रमुख तीन आलम्बन जागृत मानवके जीवनमें प्राथमिक दशामें आ जाते हैं। सच्चे देवके बाद अब सच्चे शास्त्र एवं सच्चे गुरुके सम्बन्धमें देखना आवश्यक है।

अब उसके बारेमें भी सुन लो-सत्य शास्त्र किसीका भी कहा हुआ शास्त्र नहीं हो सकता, बल्कि सत्य देवत्वकी स्थितिको पहुँचे हुए परम आत्माके द्वारा जो विश्वका और आत्माका वास्तविक स्वरूप बताया

गया हो एवं कोई भी आत्मा किस विधिसे अपनी पूर्ण स्वतन्त्र दशामें पूर्णत्वमें पहुँच सकती है इसकी सम्पूर्ण सत्य-विधि बतलाई गई हो वही वाणी सत्य शास्त्र कहलाई जा सकती है। तात्पर्य-परम आत्माकी वाणी ही सत्य शास्त्र है। अब जरा अन्य तरहसे सोचो-कोई भी रथ्यापुरुष (राहगीर) कुछ बात कह दे, उसे प्रामाणिक शास्त्र नहीं माना जा सकता है। इसी प्रकार कोई मदिरापान करके नशेमें कुछ कह रहा है, उसका कहना भी प्रामाणिकशास्त्र नहीं माना जा सकता है। आजकल विश्वमें साहित्यका अपार विस्तार हो गया है एवं होता ही जा रहा है तो क्या इन सबको सत्य शास्त्र माना जाय ? यह बात जरूर सत्य है कि शास्त्र आदिसे ही मानव परम ईश्वरत्व प्राप्ति का निर्दोष लक्ष्य निर्णीत कर सकता है एवं उस पदकी प्राप्ति कर सकता है, किन्तु यहाँ प्रश्न उठता है कि आखिर वे कौनसे शास्त्र हैं कि जिनसे हम सही-सही निर्णय कर सकें। ऐसी ही जिज्ञासा एक जिज्ञासुके मनमें उठी कि “ किं में प्रमाण स्यात्, शास्त्रा-शास्त्रविनिर्णये ? ” अर्थात्-शास्त्र कौन-सा और अशास्त्र कौन-सा ? इसके निर्णयमें मैं किसे प्रमाण मानूँ ? यहीं शंका आजके विशाल विश्वव्याप्त साहित्यको देखनेसे बेचैन कर देती है। आजके साहित्यको देखो तो विविध विषयों पर रचित अनगिनत पुस्तकोंके पर्वतप्राय ढेर नजर आते हैं। दर्शन, व्याकरण, साहित्य, भाषाविज्ञान, डाक्टरी, इन्जीनियरिंग, वकालत, चित्रकारी, वनस्पति, यन्त्र व मशीन आदिका निर्माण, संगीत, इतिहास, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, समाजव्यवस्था, राजनीति, अर्थशास्त्र, उपन्यास, कहानियाँ, नाट्य, शिल्प, कृषि आदि विविध विषयों पर, विविध विद्याओं पर विपुल पुस्तकें जन्म ले चुकी हैं और मुद्रणयन्त्रोंके उदरसे उनका अजस्र स्रोत तूफानी वेगसे प्रवाहित होता ही जा रहा है। क्या ये सब ही शास्त्र समझे जाँय ? रास्ते पर दवाईयोंके एडवरटाइजमेन्ट करनेवाली या किसी खेलकी अथवा सभा आदि प्रोग्रामकी सूचना देनेवाली पम्पलेट या हैण्डविल बँटी जा रही हैं, तो क्या छपे हुए किसी कागजको भी शास्त्र माना जाय ? प्रश्न बड़ा पेचीदा है, लेकिन तुम ही अच्छी समझदारीसे एवं सूक्ष्म विचारसे इसे हल करने चलो तो यह हल हो जाना वैसे आसान

भी है। देखो-एक कवि महात्मा ने क्या सुन्दर कहा है-

“ कला बहत्तर पुरुषकी तामें दाय प्रधान ।

एक जीव की जीविका, दुजा जीव उत्थान ॥ ”

भाव यह कि एक तरफ तो जीविकाके लिये दो पैसे कमानेकी अनेकों विद्याएँ इस दुनियाँमें विद्यमान हैं, और दूसरी तरफ तो आत्माका उत्थान करनेवाली महान् विद्या-अध्यात्मविद्या भी है। इस प्रकार संक्षेप रूपसे दो ही विद्याएँ प्रधान कहलाई- (१) आजीविका विद्या (२) अध्यात्म विद्या। अब हमें यह सोचना है कि इन दोनोंमें अधिक श्रेष्ठ कौन-सी ? महामनीषियोंने अध्यात्मविद्याको ही सर्वोपरि माना और उसके सामने जगत्की अन्य सभी विद्याओंको गौण रूपमें रख दिया है। इसका कारण यह है कि आजीविकाकी विद्याएँ मात्र परिवार पोषण या शरीर पोषण करनेके लिए सहायक विद्याएँ हैं सो भी मात्र वर्तमानकी चन्द दिनोंकी एक जिन्दगीके लिये। उनका आत्माके उत्थानके सम्बन्ध में कोई विशेष प्रयोजन नहीं, परंतु अध्यात्मविद्या मात्र वर्तमान जीवन का ही विचार न करके आत्माके अनादि अनंत अस्तित्वका, विश्वके अनादि अनंतस्वरूपका और आत्माके पूर्ण उत्थान का विवेचन प्रस्तुत करके साधारण आत्माको परम-आत्म दशामें पहुँचानेका महाद्वार खुला कर देती है। अतः आत्माके उत्थान करनेवाले सत् साहित्यको शास्त्र कहा जाता है, जिसमें धर्मपुस्तकों-धर्मग्रन्थोंका समावेश हो जाता है। तात्पर्य-आत्मोत्थान का सहायक जो सत् साहित्य वही शास्त्रकी कोटिमें आता है।

अब एक बहुत बड़ा प्रश्न यह उपस्थित हो जाता है कि जगत्में तो अनेकों धर्म, अनेकों धर्मग्रन्थ मौजूद हैं तो किसको तो शास्त्र माना जाय और किसको अशास्त्र माना जाय ? मुसलमानोंके लिये कुरान, ईसाइयोंके लिये बाइबिल, बौद्धोंके लिये त्रिपिटिक, हिन्दुओंके लिये वेद, गीता आदि ईरानियोंके लिये जिन्द आविस्ता, जैनोंके लिये समयसार, मोक्षशास्त्र आदि, सिक्खोंके लिये ग्रन्थ साहब ये सब मुख्य धर्मग्रन्थ हैं। जब प्रत्येक धर्मवाले अपने ही शास्त्रोंको सत्य शास्त्र और अन्य सभीको अशास्त्र कह देते हैं, तब तो प्रश्न और भी अधिक जटिल

हो जाता है। प्रत्येक धर्मके अनुयायी बड़े आवेशके साथ यह प्रस्थापित करना चाहते हैं कि हमारे शास्त्रोंसे ही आत्माका सर्वाधिक कल्याण हो सकता है। तब सोचो, किसे ग्रहण किया जाय ? अन्ततोगत्वा (आखिरकार) मानवकी बुद्धि ही इसका अन्तिम निर्णय करेगी। ऐसी निर्णायक तीक्ष्ण बुद्धि न हो तो शास्त्र भी क्या करे। महान् विचारकों का कथन है-

यस्य नास्ति स्वयं प्रज्ञा शास्त्रं तस्य करोति किम् ।

लोचनाभ्यां विहीनस्य दर्पणः किं करिष्यति ॥

अर्थ- जिसको प्रज्ञा-बुद्धि नहीं है, जो विवेकसे शास्त्रको जाँच नहीं सकता, परख नहीं कर सकता, उसे शास्त्रसे क्या लाभ होगा ? जिसके आँखे ही नहीं, उसको दर्पणसे क्या लाभ होगा ? अतः यहाँ सत्य शास्त्रका ठीक-ठीक निर्णय करनेवाली कसौटियोंकी परम आवश्यकता है। तो लो, यहाँ छह कसौटियाँ प्रस्तुत की जा रही हैं। उठाओ, विश्वके किसी भी शास्त्रको, और घिसके देखो, इन छहों कसौटियों पर। खरे उतरे; तो करो स्वीकार, दोष मिले तो करो इन्कार। (१) पहली कसौटी है कि सत्य शास्त्र सत्य देवके द्वारा ही कहा हुआ होना चाहिये। कहनेवाले देवमें यदि रंचमात्र भी दोष हो तो ऐसे सदोष देव द्वारा कहा हुआ शास्त्र सत्य शास्त्र नहीं हो सकता, कहा भी है-
“ वक्तुः प्रामाण्याद् वचनप्रामाण्याद् ” अर्थात्- वक्ताकी प्रामाणिकतासे ही उसके वचनकी प्रामाणिकता मानी जाती है। यदि वक्तामें राग-द्वेष मोहका कोई अत्यल्प अंश भी हो तो उसके वचन उन दोषोंके कुछ न कुछ स्पर्शसे अच्छूते नहीं रह सकते। और राग-द्वेष मोहरहित प्रभुसे खिरी हुई सहज वाणीमें किसी भी प्रकारका रंचमात्र भी स्वार्थ या आपमतलबीपन न होनेसे वही निःसन्देह प्रमाणभूत रूपसे अंगीकार करने लायक है। सत्य देवके स्वरूपका निर्णय स्थूल रूपसे इसके पूर्व किया जा चुका ही है, ऐसे सत्य देव द्वारा ही कहा हुआ सत्य शास्त्र है या उसीके पोषक उससे अविरोद्ध रूपसे रचित अन्य शास्त्र सत्य शास्त्र कहे जा सकते हैं। इनके अतिरिक्त, पूर्वापर विरोधसे सहित या ऐसे ही अन्यान्य दोषोंसे सहित जो शास्त्र हों वे सभी शास्त्र असत्य शास्त्र-अप्रामाणिक

शास्त्र अर्थात् अविश्वसनीय शास्त्र कहे जायेंगे।

(२) दूसरी कसौटी है-कि उस शास्त्रका किसीके भी द्वारा किसी भी तरह खण्डन नहीं हो सकना चाहिये। यदि कोई बात किसीके द्वारा खण्डित होकर असत्य सिद्ध हो जाय तो ऐसा वह शास्त्र सत्य शास्त्र कभी भी नहीं कहा जा सकता। हाँ, भक्तिसे आराध्यदेवकी गुणगान रूप स्तुति करते समय भक्तिकी शैलीमें कुछ आवेशपूर्ण बातें कही जाती हैं, तब थोड़ी कहीं ऐसी कोई अलंकारपूर्ण कल्पित बात कही गई हो, तो इतने मात्रसे सहसा उस शास्त्रको कोई तार्किक मानव अप्रमाणिक न माने। क्योंकि स्तुति के लक्षणको स्पष्ट कहा गया है कि “ गुणस्तोकं सदुल्लंघ्य तद्बहुत्वकथा स्तुतिः ” अर्थात्- थोड़े गुण होनेपर भी उनको बढ़ा-चढ़ाकर अधिकताके साथ कह देना इसका नाम स्तुति है। परंतु सच पूछा जाय तो परमात्माकी अत्युक्ति भी करना अशक्य कैसे है यह उपर्युक्त चरणकी द्वितीय पंक्तिमें स्पष्ट कहा गया है कि “ आनन्त्यात्ते गुणाः वक्तुमशक्यास्त्वयि सा कथम् ? ” अर्थात्- हे प्रभो ! तुम्हारे गुण तो अनंत होनेसे उनका कथन ही जब अशक्य है तो तुम्हारी वह अत्युक्तिरूप स्तुति हो कैसे सकती है ? हो ही नहीं सकती। इस प्रकारकी बात स्पष्ट है फिर भी अत्युक्ति कही गई हो तो भक्ति शैली जानकर इस गौण विवरणमें अधिक छान-बीन करना उचित नहीं लगता। शास्त्रमें मुख्य बातें-सैद्धान्तिक विषय-प्रयोजनभूत तत्त्व देखना चाहिए। आलंकारिक शैलीमें अधिक गहरे नहीं जाना चाहिये। तथापि कहीं किंचित् संख्याभेद, कथावस्तुभेद, वर्णनभेद आदि पाये भी जाँय तो भी मूलभूत सिद्धान्तकी तरफ ध्यान देना चाहिये। अतः जो शास्त्र अखण्डनीय हों वही सत्य शास्त्र होंगे। और उनके अतिरिक्त जितने भी शास्त्र खण्डनके योग्य हों वे सब असत्य शास्त्र अविश्वसनीय शास्त्र कहे जायेंगे।

(३) तीसरी कसौटी यह है-कि जिन शास्त्रोंके वचन प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों प्रकार के प्रमाणोंसे बाधित न होते हों वे ही शास्त्र सत्य कहे जा सकेंगे। यदि किसी शास्त्रके वचन प्रत्यक्ष प्रमाणसे या अनुमान आदि युक्तियोंसे गलत साबित होते हों तो वे शास्त्र अविश्वसनीय होंगे। स्पष्ट

ही है कि सिद्धान्त निर्दोष हों। इसलिये प्रत्यक्ष प्रमाणसे या स्मृति, तर्क, अनुमान आदि परोक्ष प्रमाणसे जिस शास्त्रकी किसी भी सैद्धान्तिक बातको रंचमात्र भी धक्का न पहुँचता हो, वही सत्य शास्त्र प्रामाणिक माने जा सकेंगे। उनके अतिरिक्त बाकी दोषपूर्ण सभी शास्त्र असत्य शास्त्र सिद्ध होंगे।

(४) चौथी कसौटी यह है-कि मोक्षके अर्थात् अखण्ड चिदानन्द प्राप्तिके प्रयोजनभूत जो वास्तविक तत्त्व हैं उन वास्तविक तत्त्वोंका निर्देश उपदेश जिन शास्त्रोंमें होगा, वे ही सच्चे शास्त्र हैं। अगर वास्तविक तत्त्वोंका उपदेश न पाया जाता हो तो ऐसे शास्त्र सत्य शास्त्रकी कोटिमें नहीं कहे जा सकते। इसलिये सत्य तत्त्वोंके उपदेशोंसे युक्त शास्त्र ही सत्य शास्त्र हैं और इनके अतिरिक्त बाकीके शास्त्र अप्रामाणिक शास्त्र-असत्य शास्त्र ही सिद्ध होते हैं।

(५) पाँचवीं कसौटी यह है-कि जिस शास्त्रके उपदेशानुसार चलने पर सबका हित होवे वही सच्चा शास्त्र है। लेकिन अगर किसी शास्त्रसे कुछ जीवोंका तो हित होवे और अन्य जीवोंका अहित हो जावे वे शास्त्र सच्चे शास्त्र कभी नहीं हो सकते। इसलिये जगत्के समस्त ही प्राणीमात्रके हितकी व्यवस्था जिस शास्त्रमें पाई जाय वही सत्य शास्त्र है और बाकीके सब शास्त्र अविश्वसनीय हैं।

(६) छठी कसौटी सत्य शास्त्रकी यह है-कि वह शास्त्र गलत रास्तोंको हटा देनेवाला होना चाहिये। अगर गलत मार्गको दूर न करे और उल्टे गलत मार्गका पोषण ही करे तो वह शास्त्र तो अप्रामाणिक शास्त्र है। अतः जो शास्त्र मिथ्यापथको उद्ध्वस्त करनेकी क्षमता रखता हो वही सत्य शास्त्र कहा जा सकता है। उसके अतिरिक्त मिथ्यामतपोषक सारे शास्त्र अप्रामाणिक शास्त्र कहे जावेंगे। इन छहों कसौटियों को सत्य शास्त्रकी परीक्षाके लिये अवश्यमेव स्वीकार करना चाहिये।

सत्य देव द्वारा कहे हुए शास्त्रोंमें इन सारी कसौटियोंका समावेश अवश्य ही हो जाता है। फिर भी अय असत्य शास्त्रके खोजी ! उन छहों कसौटियोंको अपने हृदयपटलपर उत्कीर्ण करके ही रख लो। लो, याद ही कर डालो उन छहोंको कि सत्य शास्त्र तो सच्चे देव द्वारा कथित,

किसीसे भी अखण्डनीय, प्रत्यक्ष परोक्षादि प्रमाणोंसे विरोधरहित, वास्तविक तत्त्वोंके उपदेशक, सर्वहितंकर एवं मिथ्यामार्ग-निवारक ऐसे ही होंगे। सत्य शास्त्रके स्वरूपके बाद अब सत्य गुरुके स्वरूपके बारेमें भी देखना आवश्यक है।

लो अब सत्य गुरुका स्वरूप। गुरुके भी अनेक प्रकार इस विश्वमें पाये जाते हैं। अनेक धर्म, अनेक धर्मगुरु हैं तो इनमें किन्हें तो गुरु समझा जाय यह भी बड़ा पेचीदा प्रश्न है। वैसे तो गुरु लौकिक क्षेत्रके एवं पारमार्थिक क्षेत्रके यों दो प्रकारके कहे जा सकेंगे। लौकिक क्षेत्रमें तो माता, पिता, भाई, अध्यापक आदि गुरु माने जा सकते हैं। यहाँ तक कि वृक्ष, नदी, पर्वत, सागर आदिको भी गुरु मानने तक कोई-कोई बढ़ गये। परंतु यहाँ हमें उन लौकिक गुरुओंके बारेमें नहीं बल्कि पारमार्थिक क्षेत्रमें-आध्यात्मिक क्षेत्रमें किन्हे गुरु माना जाता है उसे देखना है। एक प्रसिद्ध सूक्तिमें यों कहा गया है कि-

“ अज्ञानतिमिरान्धानां ज्ञानाञ्जनशलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ”

अर्थ- अज्ञानरूप अन्धकारसे अन्धे बने हुएके चक्षुको सम्यग्ज्ञानरूपी अंजनकी शलाकासे जिसने खोल दिया उस श्रीगुरुको नमस्कार हो। तात्पर्य अज्ञानान्धकारको नष्ट कर जो सम्यग्ज्ञानके प्रकाशको प्रदान करता है और अज्ञानीको सम्यग्ज्ञानी अर्थात् ज्ञानचक्षुष्मान् बना डालता है वही श्रीगुरु है। यह तो गुरुकी स्थूल रूप परिभाषा है। गुरुका साधुपन जो है उससे उसकी गुरुता स्पष्ट होती है। साधु माने जो आत्माको साधे-“ आत्मानं साधयतीति साधुः ” अर्थात् जो आत्माको परमात्मस्वरूपमें परिणत करा देनेकी सम्यक् साधना करता है व साधु है और ऐसा साधु पुरुष गुरु कहलाता है। परंतु यह भी मोटी परिभाषा है गुरुकी। आखिर गुरुकी भी कोई विशिष्ट कसौटियाँ तो होंगी। उन्हें देखनेपर गुरुका सत्य स्वरूप समझमें आ सकेगा। ये कसौटियाँ भी सत्य शास्त्रकी कसौटियोंके समान लगभग छह ही हैं। लो तो अब एक-एक कसौटीको सुन लो और खूब अच्छी तरह निष्पक्ष बनकर उन्हें हृदयंगम करो।

(१) सत्य गुरु की पहली कसौटी है विषयासक्तिरहितता । पंचेन्द्रियोंके जो विषय हैं उनमें जिसे आसक्ति हो वह सत्य गुरु नहीं कहा जा सकेगा। शरीरमें पाँच इन्द्रियाँ हैं । मुख्यतः-स्पर्शनेन्द्रिय (खाल), रसनेन्द्रिय (जिह्वा), घ्राणेन्द्रिय (नाक), चक्षुरिन्द्रिय (आँखे), कर्णेन्द्रिय (कान) । स्पर्शनेन्द्रियका विषय है स्निग्ध, रुक्ष, शीत, उष्ण, गुरु, लघु, मृदु, कठिन ये अष्टविध स्पर्श । इन स्पर्शोंमें आसक्ति नहीं होनी चाहिये सत्य गुरुको । रसनेन्द्रिय का विषय जो कडुआ, मीठा, तीखा, खट्टा, चरपरा आदि रस उनमें भी सत्य गुरुको आसक्ति नहीं होगी । नासिकेन्द्रियके विषय जो सुगन्ध और दुर्गन्ध इनमें भी सत्य गुरुको आसक्ति नहीं होगी । चक्षुरिन्द्रियके विषय काला, नीला, लाल, पीला, सफेद आदि वर्णमान् पदार्थों-रूपोंमें भी सत्य गुरुको आसक्ति नहीं होगी। एवं कर्णेन्द्रियके विषय जो सा, री, ग, म, प, ध, नी आदि स्वर-सुस्वर या दुःस्वर उनमें भी सत्य गुरुको आसक्ति नहीं होगी । यदि पंचेन्द्रियके किसी भी विषयमें कोई साधु आसक्त हो तो वह विषयासक्ति उसके सत्य साधुपनमें कलंक उत्पन्न करती है । अतः पंचेन्द्रिय विषयोंकी आसक्तिपर जिसने विजय प्राप्त की हो वही सत्य गुरु हो सकता है और इससे रहित साधु सत्य गुरु नहीं कहे जा सकते ।

(२) सत्य गुरुकी दूजी कसौटी है आरम्भरहितता । आरम्भका मतलब है नौकरी, सेवा, खेती, व्यापार, उद्यम आदि करने के काममें प्राणियोंको दुःख पहुँचानेवाली प्रवृत्ति की जाना आरम्भ है । श्रीगुरु साधारण संसारी जीवोंके समान नौकरी, खेती, व्यापार, रसोई आदि काम नहीं करेंगे । वे तो नौकरी, कृषि, वाणिज्य, पाक कार्य आदिसे निवृत्त होकर भगवत्-प्राप्तिकी ऊँची साधनामें लगेंगे । कोई यहाँ कह देंगे कि नौकरी, खेती, व्यापारादि तो रहो लेकिन रसोई तो बनायेंगे, इसमें क्या हानि है ? परंतु सच पूछा जाय तो रसोई बनानेमें भी ईंधन, चूल्हा, अग्नि, पानी, बर्तन आदि अनेकों झंझट और हिंसात्मक कार्य करने पड़ेंगे और यह ईंधन-बर्तनादिका परिग्रह भी बढ़ेगा सो अलगा अतः श्रीगुरु अग्नि नहीं जलायेंगे, ईंधन इकट्ठा नहीं करेंगे, बर्तन नहीं रखेंगे (एक शौचके लिए जलपात्र-कमण्डल रूप बर्तनमात्र अपरिहार्य होनेसे रखना होगा)। ये सारे

आरम्भकार्य करनेमें अनेकों जीवोंकी हिंसा व परिग्रह संचय भी हो ही जाता है। तो क्या करें ? हाँ ! भिक्षावृत्तिसे आहारार्थ भ्रमण करने जावे और जहाँ कोई योग्य भक्त उन्हें विधिपूर्वक बुलाकर शुद्ध आहारपान देवे उसके यहाँ विधिपूर्वक शुद्ध आहार कर आवे, सो भी करपात्रमें, बस ! तात्पर्य किसी भी प्रकारका आरम्भ श्रीगुरु नहीं करेंगे वे ही सत्य गुरु है। इसके अतिरिक्त आरम्भी कार्योंमें लगे हुआँकी गुरुतामें बाधा अवश्य ही उपस्थित हो जाती है। अतः अत्यन्त निष्पक्ष बनकर सूक्ष्म विचार करनेपर ही इस बातमें कितना गहरा अर्थ एवं सत्यपन भरा हुआ है यह समझमें आ जायगा और प्रमोद हो जायगा।

(३) सत्य गुरु की तीसरी कसौटी है परिग्रहरहितता। परिग्रहका मतलब है- परपदार्थ या विकारीभाव इनमें ममत्वरूप बुद्धिका होना। “ ममेदंबुद्धिलक्षणः परिग्रह ” अर्थात् अन्य पदार्थ और अशुद्धभाव इनमें ‘ ये मेरे हैं ’ ऐसी बुद्धिका नाम परिग्रह है- यों महापुरुषोंने उसका भाव विशद किया है। परिग्रहके बहिरङ्ग परिग्रह और अन्तरङ्ग परिग्रह यों मुख्य दो भेद एवं बहिरङ्गके दश और अन्तरङ्गके चौदह इस प्रकार चौबीस उपभेद पाये जाते हैं। सत्य गुरुके पास इसमेंसे कोई भी परिग्रह न होनेसे वे सकल परिग्रहविरहित कहे जाते हैं। अन्तरङ्ग परिग्रहमें मिथ्यात्व (अविद्या), क्रोध, मान, कपट, लोभ, हास्य, इष्ट-प्रीति, अनिष्ट-द्वेष, शोक, भय, ग्लानि, स्त्रीभोगभाव, पुरुष-भोगभाव, उभयभोगभाव (नपुंसक भाव) ये चौदह आत्माके शुद्ध स्वरूपके विरुद्ध विकारीभाव हैं। श्रीगुरु हमेशा सर्व विकारीभाव रहित अपने शुद्ध स्वरूप को ही अपना मानने वाले होनेसे इन विकारीभावोंको वे कभी भी अपना नहीं मानते। यदि कभी इनमेंसे कोई विकारीभाव उनकी आत्मामें उत्पन्न हो जाता है तो वह जलमें अंगुलीसे खींची हुई रेखाके समान अत्यल्प कालमें ही नष्ट हो जाता है। ऐसे प्रसंगमें भी वे गुरुदेव उस विकारीभावको किसी परनिमित्तके कारण उत्पन्न हो जानेसे पर-भाव ही मानते हैं कदापि उसे अपना स्वभाव नहीं मानते। इस प्रकार सत्य गुरु क्रोध मान आदिके ममत्वसे सम्पूर्ण ही रहित और अपने शुद्ध चिदानन्द आत्मस्वरूपकी ओर हमेशा दत्तचित्त ऐसे अत्यन्त प्रशान्त मूर्ति होते हैं।

बहिरङ्ग परिग्रहोमें क्षेत्र (खेती, जमीन आदि), इमारत, पैसा, सोना, पशुसम्पत्ति, धान्य, नौकर, दासी, वस्त्र और वर्तन ये दश प्रकारके होते हैं। इनमेंसे एक भी वस्तु सर्वपरिग्रहत्यागी ऐसे उन महागुरुओंके पास नहीं होती, अर्थात्-कहीं भी एक परमाणु बराबर जमीनसे भी उनका ममत्व नहीं होता। कोई भी इमारत या एक भी पैसा, सोना, चाँदी आदिका कण कुछ भी उनके पास नहीं रहता। न कोई जानवर, न कुछ अनाज, न नौकर-नौकरानी, न कोई बर्तन उनके पास होता है। शौच आदिकी निवृत्तिके लिये ही मात्र एक जलपात्र (कमण्डलु) रखते हैं, लेकिन उसमें भी ममत्व या प्रीतिभाव नहीं रखते। वस्त्रका एक इंचका छोटासा टुकड़ा भी वे शरीर पर धारण नहीं करते अर्थात् पूर्णरूपसे नग्न, परमहंस स्वरूप रहते हैं। हाँ, ज्ञानार्जनके लिये धर्मशास्त्र और जीवोंकी हिंसा न हो, इसलिये उनके निवारणके लिए मुलायम ऐसे कुछ मोरके पंख रखते हैं परंतु उनमें भी ममता या प्रीति तनिक भी नहीं रखते। इस तरह सर्वपरिग्रह रहित-सकलसङ्गपरित्यागी ऐसे महागुरु ही सच्चे गुरु कहे जाते हैं। इनके अतिरिक्त परिग्रहधारी अन्य गुरुओंको इतनी उच्च कोटिमें रखना अयुक्त हो जाता है।

(४) सत्य गुरुकी चौथी कसौटी है-सतत ज्ञानार्जनशीलता। जिस समय अपने शुद्ध आत्मस्वरूपमें सुनिश्चल लीन हो जाने रूप ध्यान नहीं होता उस समय सत्य धर्मशास्त्रोंके स्वाध्यायमें वे अपने मन को रमाते हैं। लौकिक कार्योंमें-दुनियादारीकी झंझटोंमें वे अपने चित्तको नहीं लगाते। इस प्रकार ध्यानके अतिरिक्त कालमें सतत ज्ञानोपार्जनका कार्य करनेवाले सत्य गुरु होते हैं और सतत ज्ञानार्जनशीलतारूप गुणसे रहित साधुको सत्य गुरु कहना संगत नहीं होगा।

(५) सत्य गुरुकी पाँचवी कसौटी है-प्रगाढ़ ध्यानशीलता। अपने आत्माका शुद्धस्वरूप भली-भाँति जानकर उसमें अत्यन्त एकाग्र होकर निर्विकल्प समाधिके विशुद्ध आनन्दरसका पान करनेवाले ऐसे ये सत्य गुरु महाध्यानी होते हैं। यदि इस प्रकार आत्मानुभव न हो तो मात्र बाह्य-परिग्रहके त्यागसे या विकारीभावोंकी अतिमन्दतासे किसी साधुको सत्य गुरु नहीं कहा जा सकता। बल्कि वह प्रगाढ़ ध्यानशील

आत्मानुभवी ही होता है और तभी वह सत्य गुरु कहा जा सकता है। ध्यान-रहित आत्मानुभवशून्य ऐसे साधुकी परिग्रहरहितता, नग्नता आदि मात्र बाह्य भेष ही कहे जा सकेंगे। उस साधुको सत्य गुरु नहीं कहा जा सकता। तात्पर्य-सत्य गुरु ज्ञान-ध्यान आदिमें सदा तत्पर रहते हैं।

(६) सत्य गुरुकी छठी कसौटी है तपस्विता। ज्ञान और ध्यान इनकी सिद्धिके लिये तप सहायक साधन है। तपके बिना ज्ञानकी और ध्यानकी सिद्धि नहीं हो सकती। इसके अन्तरंग तप व बहिरंग तप यों मुख्य दो भेद हैं एवं अन्तरंगके छह और बहिरंगके छह इस तरह कुल बारह उपभेद पाये जाते हैं। बहिरंग तप में (१) उपवास, (२) ऊनोदर (भूख से कुछ कम खाना), (३) आहारके लिये कोई विशेष नियम करना, (४) रसोंका त्याग, (५) एकान्त निवास, (६) शारीरिक क्लेशका अभ्यास ये छह प्रकार गर्भित हैं। इनसे देहसे भिन्न आत्मस्वरूपका पृथक् अनुभव करनेमें सहायता प्राप्त होती है। अन्तरङ्ग तपोंमें (१) प्रायश्चित्त, (२) विनय, (३) सेवा, (४) स्वाध्याय, (५) अहंकार-ममकारका त्याग, (६) ध्यान (चित्तविक्षेप त्याग) ये छह प्रकार गर्भित होते हैं। इनसे आन्तरिक विशुद्धि होकर ज्ञान और ध्यानके लिये बहुत अच्छी क्षमता प्राप्त होती है। इस प्रकार ज्ञान और ध्यानके लिये इन बारह तपोंमेंसे आवश्यकतानुसार कम-अधिक तप सच्चे गुरु करते रहते हैं। इनके अतिरिक्त उपर्युक्त तपोंसे रहित जो स्वच्छन्द प्रवृत्तिधारी होंगे उनको सत्य गुरु कहना विसंगत होगा।

सत्य देव द्वारा कहे हुए शास्त्रोंमें जो गुरुका स्वरूप बतलाया है उसमें इन छहों कसौटियोंका अन्तर्भाव हो जाता है। यदि कोई साधु-मुनि बाहरसे परिग्रहत्यागी हो लेकिन अन्तरंगमें परपदार्थोंसे ममत्व-राग रखने वाला हो, दुनियादारीकी गप्पे हाँकता हो, फालतू बातोंमें पड़ता हो, साधुके अयोग्य ऐसी क्रियाओंमें रमता हो और ज्ञान तथा ध्यान आदिमें जिसका चित्त नहीं लगता हो, तो ऐसे मोही पथभ्रष्ट मुनिसे निर्मोही मोक्षमार्गस्थ गृहस्थ श्रेष्ठ कहा जायगा। कहा भी है-

“ गृहस्थो मोक्षमार्गस्थो निर्मोहो नैव मोहवान् ।

अनगारो गृही श्रेयान् निर्मोही मोहिनो मुनेः ॥ ”

आजकल ऐसे निर्दोष एवं सच्चे साधुका-मुनिका मिलना कठिन है । कहीं मिल जायँ तो अहो !

हे सत्यान्वेषी ! सत्य गुरुकी इन छहों कसौटियोंको अपने हृदयकी गहराईमें प्रस्थापित करो । लो उन छहोंको कण्ठस्थ ही कर डालो कि सत्य गुरु इन्द्रियविषयासक्तिरहित, आरम्भरहित, परिग्रहरहित, सततज्ञानार्जनशील, प्रगाढ़ ध्यान- शील एवं तपःशील ऐसा होता हैं ।

अबतक सम्यग्दर्शन को हृदयंगम करनेके लिये जो सत्य देव-शास्त्र-गुरुका स्वरूप संक्षेपमें कहा गया, उसीको बारम्बार सोच कर उन्हीं तीनों पर जीवनपर्यन्त वज्रसे भी अभेद्य अभंग ऐसे श्रद्धान को-सम्यग्दर्शनको धारण करना चाहिये । बिना सम्यग्दर्शनके सर्व दुःखोंसे मुक्ति हो नहीं सकती और जिसे सम्यग्दर्शन प्राप्त हुआ उसे मुक्ति मिले बिना रह ही नहीं सकती । सम्यग्दर्शनका महत्त्व कितना है इसका वर्णन इससे अधिक और क्या किया जाय । आह ! बिना निश्चय सम्यग्दर्शन अर्थात् बिना स्वात्मानुभव के ही जिन्होंने अपना अनमोल मानवजीवन खोया एवं असत्य देव-शास्त्र-गुरुरूपी अकल्याण की खाईमें ही भ्रष्ट-नष्ट कर दिया उनकी हानि का वर्णन कोई क्या कर सकेगा । उसने तो मिथ्यात्वकी खाईमें आत्माको पतित कर डुबो दिया । दुनियामें तीनों कालमें सबसे बड़ा पाप मिथ्यात्व (अविद्या) के समान अन्य कोई भी नहीं और सारी दुनियामें त्रिकालमें ही सम्यक्त्व (सम्यग्दर्शन) के समान सबसे अधिक महत्त्वकी बात अन्य कोई नहीं । मिथ्यात्व और सम्यक्त्व इनमें एक तो जीवको जन्ममरणरूप अवस्थाओंमें महान् दुःख भोगते हुए भ्रमानेवाला महाराक्षस और दूसरा जन्ममरणरूप अवस्थाके महान् दुःखोंसे हमेशाके लिये छुड़ाकर अनंत और अखण्ड शुद्ध-चिदानन्दकी प्राप्ति करा देने वाला महादेवता ! प्रिय सत्याग्रही ! अबतक तुम्हारा जीवन बिना सम्यक्त्वके मिथ्यात्वमें ही बरबाद हो गया हुआ हो, तो अब भी तो जग जाओ, जाग उठो, “ बीती बात विसार दे आगेकी सुधि लेहु ” इस आशा-प्रदीपको प्रज्वलित कर अभी भी जो जिन्दगी बची हुई हो उसमें

मिथ्यात्व-त्याग और सम्यक्त्व-ग्रहण करके महान् नररत्न बन जाओ। धन्य है ऐसे सम्यग्दर्शनके धारी नररत्नोंको। लेकिन हन्त ! कितने विरले होंगे ऐसे नररत्न जगत्के मिथ्यात्वी मानवोंकी अति विशाल समूहरूप कोयलेकी अथाह खानमें। प्रिय ! तुम तो अवश्य ! अवश्य !! अवश्य ही !!! अविद्याका त्याग करो और सम्यग्दर्शनधारी बन जाओ। विशुद्ध सम्यग्दर्शनधारी बनना चाहो तो सम्यग्दर्शनके पच्चीस दोषोंका परित्याग एवं सम्यग्दर्शनके आठ अंगोंका परिग्रहण करना होगा। पच्चीस और आठ इन कुल ३३ बातोंका वर्णन इस पुस्तिकाके परिशिष्टमें किया जावेगा। सम्यग्दर्शनकी यदि विशुद्धि करनी हो तो इन तैंतीस बातोंका ज्ञान अवश्य चाहिये।

सम्यग्दर्शनधारी जीवको ' सम्यग्दृष्टि ' कहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव यदि सम्यग्दर्शनके साथ मरण करेगा तो मरणके बाद ऊर्ध्वजगतोमें ही-स्वर्गोमें ही जन्म धारण करेगा, ऐसा नियम ही है। यह भी नियम है कि सम्यग्दृष्टि जीव मुक्ति पायेगा ही। क्या ही मार्मिक बात कह दी है किसी महात्माने कि कोई सम्यग्दृष्टि जीव मुक्ति नहीं चाहता हो तो भी मुक्ति उसे जबरदस्ती प्राप्त होगी। अहो ! वही श्रेष्ठ मनुज है जो सम्यक्त्व को (सम्यग्दर्शनको) धारण करेगा अर्थात् सत्यको धारण करेगा। तो चलो सत्यकी ओर। हे सत्य वीर !

सत्य के लिए तुम सदा ही जागृत हृदय हो एवं सहर्ष सिद्ध हो। परंतु सोचो तो कि सत्यको (सम्यग्दर्शनको) धारण करने का अधिकार किन को है इस जगत्में ? भारतीयोंको या विदेशियोंको ? स्त्रियोंको या पुरुषोंको ? बालकोंको या वृद्धोंको ? धनिकोंको या गरीबोंको ? ब्राह्मणोंको या शूद्रोंको ? क्षत्रियोंको या वैश्योंको ? किनको ? यह प्रश्न ही अयोग्य है। सत्यको समझने, ग्रहण करनेका ठेका किसी अमुकका ही नहीं है। सत्य तो विश्वमें सबके लिए खुला है। जो सत्यको धारण करे, सत्य उसका। सत्य किसी हिन्दू, ईसाई, इस्लाम, बौद्ध, जैन, सिक्ख, पारसी आदि धर्म या संप्रदाय या मजहबका नहीं। वह सब के लिए खुला है-सबका है। अयि सत्याग्रही आत्मन् ! तुम कोई भी हो सत्यको धारण कर सकते हो, इसके लिए कोई भी रोक-टोक नहीं।

आओ ! बड़े प्यारसे इसे धारण कर सत्य जीवन ही जीनेवाला महामानव बनो ।

क्या शूद्रतक इसे धारण कर सकते हैं ? हाँ भैया ! शूद्रोंमें सबसे हीन गिना गया चाण्डाल भी इसे धारण करनेका पूर्ण हकदार है । इतना ही नहीं, बल्कि यदि चाण्डाल सत्यको धारण कर ले तो उसे मनुष्य न मानते हुए देवत्व जैसी उच्चकोटिका माना है तो बाकीकी बात ही क्या ! लो सुन लो समन्तभद्रस्वामीकी गगनभेदी गर्जना । लगभग २००० वर्षके प्राचीनकालमें सन्त समन्तभद्र एक अत्यन्त निष्पक्ष, कट्टर सत्यनिष्ठ विश्वधर्मके महान् सन्त हो गये । अत्यन्त निर्भीकतासे सिंह जैसी गर्जना कर वे कह गये-

सम्यग्दर्शनसंपन्नमपि भातांगदेहजम् ।

देवा देवं विदुर्भस्मगूढांगारांतरौजसम् ॥

भावार्थ-सम्यग्दर्शन से (सत्यसे) संपन्न व्यक्ति यदि चाण्डाल कुलोत्पन्न हो तो भी उसे महर्षियोंने ' चाण्डाल ' कहनेके बजाय ' देव ' कहा अर्थात् ' पूज्य ' , ' महान् ' कहा । ऊपरी चमड़ीसे चाण्डाल लेकिन अन्तस्में सत्यका रत्नदीप जगमगा उठनेसे ' देव ' । ठीक ही है-राखके भीतर अंगार छिप गया हो तो क्या हुआ, अंगारके अन्तस्में धधकता हुआ तेज विद्यमान है । अहो ! अन्तःसत्य महान् है, सुन्दर है । सम्यग्दर्शन महान् है, सुन्दर है । सम्यग्दृष्टि जीव चाहे कोई भी हो वह महान् है, सुन्दर है । हृदयमें यदि सत्य है तो मात्र ऊपरी बातों पर ही न जाते हुए सच्चे सन्त उसे देव कहनेमें भी जरा भी नहीं हिचकिचाये । धन्य है ऐसे निर्भय सन्तोंकी सत्यनिष्ठता और पूर्ण स्पष्टताको ।

लगभग ऐसे ही विचार महाराष्ट्रके एक संतके भी पाये गये है अतः वे यहाँ दिये जा रहे हैं । सुनो उन्हें भी । अंदाजन् ३०० साल पहले महाराष्ट्रमें ' सन्त चोखा ' नामका एक सन्त दलित वर्गमें हो गया । अपनेको धिक्कारनेवाले तत्कालीन समाजसे यह पवित्रहृदयी सन्त मराठी भाषामें रचित अपने एक भजनमें बोल उठा-

“ कमान डोंगी पर तीर नोहे डोंगा । काय भुललाशी बरलिया रंगा ॥१॥

नदी डोंगी पर जल नोहे डोंगे । काय भुललाशी वरलिया रंगे ॥२॥

उत्स डोंगा पर रस नोहे डोंगा । काय भुललाशी वरलिया रंगा ॥३॥

‘ चोखा ’ डोंगा पर भाव नोहे डोंगा । काय भुललाशी वरलिया रंगा ॥४॥ ”

अर्थ- कमान माने धनुष टेढ़ा (डोंगी) होगा, पर तीर टेढ़ा नहीं हैं। क्यों मुग्ध हो गये ऊपरी ही रंग-ढंग पर। नदी टेढ़ी होगी पर जल टेढ़ा नहीं है। क्यों मूढ़ बन गये हो बाह्य ही रागरंग पर। ईख टेढ़ा होगा पर रस टेढ़ा नहीं हैं। क्यों गलती कर रहे हो बाहरी ही रंग पर। ‘ चोखा ’ टेढ़ा होगा। (देह-जाति-कुलादिसे) पर उसके हृदयका भाव (अच्छी बातोंको ग्रहण करनेके लिए सदा उत्सुक भाव) वह टेढ़ा नहीं है। क्यों मुग्ध हुए जाते हो बाहरी ही रंग-ढंगपर ! तात्पर्य अन्तरंगके पवित्र भावको देखो-उसे अधिक महत्त्व दो, मात्र बहिरंग पर मत जाओ !

लगभग ३०० साल पहले एक हिन्दू सन्त ‘ चोखा ’ के ये बोल एवं लगभग २००० साल प्राचीन जैन सन्त स्वामी समन्तभद्रके इसके पूर्व हुए गर्जनोद्गार दोनों आन्तरिक भावोंकी महत्ताको कितनी श्रेष्ठता देनेवाले हैं और बहिरंग बातोंको कैसी गौणता देनेवाले है यह स्पष्ट सामने आनेसे सन्तजन हमेशा आंतरिक भावोंको अत्यधिक महत्त्व देते हैं यह सिद्ध हो जाता है। जबकि हृदयमें अच्छे-अच्छे भाव हों तो मात्र इतने ही से हीन-कुली मानव भी सन्त चोखाके मत से महान् है तो यदि हृदयमें ‘ सम्यग्दर्शन ’ ही हो, सत्य की स्थापना हो, तो उसका कहना ही क्या। वह तो अतिमहान् है, सच्चा महामानव है।

आत्मज्ञानको प्राप्त करनेमें-सत्यको प्राप्त करनेमें किसीको भी नहीं रोकना चाहिए। आत्मज्ञानकी बात-सत्यकी बात किसीसे छिपाकर भी नहीं रखनी चाहिए। ‘ यास्क ’ नामक एक प्राचीन भाष्यकारने इसी प्रकारके अपने भाव प्रकट किये हैं। वे कहते हैं कि-

“ आत्मज्ञानमें आर्य, म्लेच्छ, ब्राह्मण, शूद्र आदि सभीका समानाधिकार है। सभीको यह शिक्षा दो। कौन जानता है कि किसकी आत्मा कब जाग उठेगी ? ”

यास्क ऋषिके इन उद्गारोंसे भी पता चल जाता है कि सत्य सब के लिए खुला है। उसे प्राप्त करनेमें कोई किसीको भी बाधक न

बने, उल्टे साधक या प्रोत्साहक बने ! प्रायः सभी सन्तोंका, महापुरुषोंका, सज्जनोंका विचार इस बारेमें एक-सा है। अब इस निर्दोष सत्यको धारण करना यही एक कर्तव्य है।

व्यवहार: बाह्याचरण:

अबतक यह देखा गया कि सत्यके लिए समस्त परजगत्से विरक्त होकर सर्वपृथक् चिदानन्दमय स्वात्माका अनुभव-आत्मसाक्षात्कार करना होगा, क्योंकि निश्चय सत्य स्वात्मानुभूति ही है। व्यवहारसत्यके लिए प्राथमिक दशामें देव, शास्त्र, गुरु इन तीनोंके आलम्बनकी जरूरत पड़ती है परंतु वे देव, शास्त्र, गुरु असत्य देव, शास्त्र, गुरु न हों बल्कि सत्य देव, सत्य शास्त्र एवं सत्य गुरु ही हों तभी व्यवहारसत्यकी प्राप्ति कही जा सकेगी। तात्पर्य-आत्मानुभव और सत्य देव, शास्त्र, गुरुरपर ही श्रद्धान यही सत्यनिष्ठ मानवका मानव जीवनमें सर्वोपरि, सर्वोच्च कर्तव्य है। यह तो प्रायः आन्तरिक भावोंमें अनुभूति रूप व श्रद्धा रूप आचरण हुआ। लेकिन बाह्यमें भी कुछ तो अच्छा आचरण होना चाहिये। वह भी अवश्य ही अपेक्षित है। बाह्यमें हिंसात्मक या निन्द्य, अनैतिक आचरण हो तो ऐसा अयोग्य व्यक्ति क्या प्रगति कर सकेगा। जिसका बाह्याचरण शुद्ध है, अहिंसात्मक है, नीतिमय है, स्तुत्य है ऐसे पवित्र व्यक्तिके हृदयमें ही सत्य देव, शास्त्र, गुरुके प्रति श्रद्धाभाव स्थिर हो सकेगा एवं वह स्वात्मानुभव भी कर सकेगा। अतः सत्याग्रहीको सत्यकी प्राप्ति करनी हो तो बाह्याचारमें भी कुछ अच्छी बातोंका पालन करना अनिवार्यरूपसे आवश्यक है। एक तो शुद्ध खानपान होना चाहिए अर्थात् अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण नहीं करना चाहिए और दूसरी बात व्यसनोंका परित्याग करना चाहिये। ये दोनों बातें बिल्कुल प्रारम्भिक हैं और हैं अत्यन्त महत्त्वकी। सम्यग्दर्शनरूप सत्य धारण करनेवालेको इनका भी धारण करना चाहिये।

(१) शुद्ध खान-पान:

अभक्ष्य त्याग में मुख्य रूपसे आठ चीजें आती हैं, जिनका सेवन जीवनमें कभी भी नहीं करना चाहिए। वे आठ चीजें हैं-(१) मद्य,

(२) मांस, (३) मधु, (४) बड़का फल, (५) पीपलका फल, (६) पाकरका फल, (७) ऊमरका फल और (८) कठूमरका फल।

(१) मद्य-अर्थात् शराबमें-चूँकि शराब सड़ा-गलाकर बनाई चीज होनेसे- अनंतों जीवोंका समूह रहता है, प्रतिक्षण जन्म-मरण करता रहता है उसका पीना महाहिंसाजनक है। दूसरे, उसके पीनेसे बुद्धि भ्रष्ट हो मानव विवेक खो देता है और धन-कण आदि सब गँवा बैठता है। जिससे उसकी जिन्दगी ही बरबाद हो जाती है यह दुनियामें स्पष्ट सिद्ध ही है। तीसरे, वह नशेमें किस-किस गन्दगीमें गिर जाता है इसका क्या कहना ! उसके मुँहमें कुत्ता तक पेशाब कर जावे और उसे उसका होश भी न हो ऐसी अत्यन्त तुच्छ दशा हो जाती है। अतः जीवन भरमें शराब त्यागकी प्रतिज्ञा सत्य देव-शास्त्र-गुरु-साक्षीपूर्वक जरूर करनी चाहिए।

(२) मांस-मांस किसी जमीनमेंसे या किसी पेड़से तो मिलता नहीं। किसी प्राणीको मार डालनेपर ही उसकी प्राप्ति होती है। किसी निरपराध प्राणीको मारना यह महाहिंसाकारक क्रूर कृत्य है। एवं च मांसभक्षण मानवका प्राकृतिक आहार है ही नहीं, यह आज विज्ञानसे भी सिद्ध हो चुका है और अप्राकृतिक आहार अहितकारक होता ही है यह तो प्रकृतिका नियम है। मांस भक्षणसे मानवकी पवित्रता भी नष्ट होने लगती है, बुद्धि भ्रष्ट हो जाती है, अनेक भयंकर रोग हो जाते हैं। धर्मको हृदयमें धारण करनेके लिए आवश्यक पवित्रता न होनेसे ऐसे मानवको सत्यकी प्राप्ति असम्भव हो जाती है। मांसभक्षण कितनी निन्द्य, हिंस्त्र एवं नीच बात है इसका जगत्के प्रायः सभी धर्मोंने खूब ऊहापोह किया है। सत्य प्राप्तिके लिए निकले हुए पवित्र मानवको जिन्दगीमें मांस कभी भी न खानेकी प्रतिज्ञा करना परमावश्यक है, अनिवार्य कर्तव्य है।

(३) मधु-अर्थात् शहद भक्षण भी महाहिंसाकारक है। एक तो दूर-दूरसे जाकर अत्यन्त परिश्रमपूर्वक संग्रह किये हुए उन निरपराध मधु-मक्खियों के आहार संचयको एकदम लूट लेना महापाप है। दूसरे, मधु तो उन मधुमक्खियोंकी जुठन, वांति है और उसीमें उनका मलमूत्रोत्सर्जन भी होनेसे अत्यन्त अपवित्र है। तीसरे, उस छत्तेमें उनके

असंख्यां अण्डे एवं बाल-बच्चे होते हैं उन सबका विनाश हो जानेसे भी महापाप है । एक जगह धर्मशास्त्रमें तो इतना स्पष्ट लिखा है कि मधुमक्खियोंके एक छत्तेका नाश करना सात गाँवोंको जला डालने जितना घोर पाप है । चौथे, मधु ब्रह्मचर्यमें भी दोषोत्पादक है इसीलिए हिन्दू, जैन, वैष्णवों आदिके शास्त्रोंमें इसका निषेध पाया जाता है । “ मधु मांसञ्ज वर्जयेत् ” यों मनुस्मृतिमें तथा अन्यान्य हिन्दू शास्त्रोंमें आया है तो जैन शास्त्रोंमें तो इसका अत्यन्त निषेध बहुत ही बार किया गया है और प्रायः सभी जैन सज्जन इसे दवाईमें भी नहीं खाते । हाँ, दवाईमें लेने का प्रसंग ही आ पड़ा तो शक्करकी या गुणकी चाशनी बनाकर उसमें दवाई लेते हैं । अन्य भी कई दोष इसमें हैं । अतः मधु कभी नहीं खानी चाहिये । सत्यकी उपलब्धि करने निकले हुए सज्जनको मद्य और मांसके साथ मधुका भी त्याग करना चाहिए। इन तीनों चीजोंके आद्याक्षर ‘ म ’ होने से ये ‘ तीन मकार ’ के नामसे भी प्रसिद्ध हैं ।

(४) बड़का फल (५) पीपलका फल (६) पाकरका फल (७) ऊमरका फल तथा (८) कठूमरका फल ये पाँच फल भी अभक्ष्य हैं । इन्हें ‘ पंच उदुंबर फल ’ भी कहते हैं । इन फलोंके अन्दर असंख्यात जीव तथा उनके बाल-बच्चे आदि होते हैं । एक-एक फल मानो एक-एक नगर ही होता है उन जीवोंका । एक ही फल खाओ तो हजारों-लाखों जीवोंकी हत्या की होती है, मानो एक नगर ही उजाड़ दिया ऐसी महाहत्या हो जाती है । वैसे तो इन फलोंको प्रायः कोई खाते ही नहीं । फिर भी महापुरुषोंने इन बातोंको सावधानी बरतनेके लिए जोर देकर कहा है । ये ‘ पंच उदुंबर फल ’ उपलक्षणात्मक हैं अर्थात् ये पाँच ही न खावें ऐसा नहीं बल्कि उसका मतलब है कि जिन किन्हीं फलों में ऐसे असंख्यो जीव होते हैं ऐसे अंजीर, आदि फल तथा पेड़के निचले बहुत मोटे तनेको (काठको) फोड़कर उसमेंसे प्रगट होनेवाले फल जैसे कटहल आदि ये कठ-फोड़-फल या कठूमर कहलाते हैं ऐसे फलोंका भक्षण नहीं करना चाहिए । एवं हि मद्यमांसादिके उपलक्षणमें मांस, मछली, अंडे, शराब जैसी नशा करनेवाले पेयादि सब समझे ।

सत्यसेवक इन आठ चीजोंका सेवन कभी भी न करनेकी

प्रतिज्ञासे बद्ध हो जाता है जीवन भरके लिए। ये तो बिल्कुल प्रारम्भ ही के गुण हैं- मूल गुण हैं। अतः ये 'अष्टमूलगुण' नाम से प्रसिद्ध हैं। महर्षियोंने यहाँतक कहा है कि इन अष्टमूलगुणोंको धारण करनेवाला ही सत्य भगवान्की वाणीको हृदयंगम करनेका पात्र बन सकता है। अतः सत्य प्राप्तिके लिए प्रत्येक जागृत सज्जन को अष्टमूलगुण धारणका नियम सत्य देव शास्त्र गुरुकी साक्षीपूर्वक अवश्यमेव लेना चाहिए। अष्टमूलगुणका धारण माने ३ मकार व ५ उदुंबर फलोंका सेवन न करनेकी प्रतिज्ञा करना।

सत्य के पुजारी के लिए शुद्ध खानपानसेवन एवं व्यसनत्याग ये दो बातें पीछे बतायी गयी थीं। उनमेंसे पहली बात-शुद्ध खान-पान सेवनका विचार अष्टमूलगुण पालनके द्वारा हो चुका। अब यहाँ दूसरी बात जा 'व्यसनत्याग' है उसका विचार कर्तव्य है।

(२) व्यसन त्यागः

व्यसन मनुष्यको बरबाद कर डालते हैं ऐसे दुनियामें अनेकों प्रत्यक्ष उदाहरण देखकर साफ जाहिर हो चुका है अतिप्राचीनकाल ही से। अतः व्यसन बुरे होते हैं, इसमें प्रायः किसीको सन्देह नहीं रहा है। स्वयं समझदार व्यसनी भी जानता है कि मेरा व्यसन बुरा निश्चित ही है और यह छूट जाय तो अच्छा है। पर बेचारा जल्द छोड़ नहीं पाता। यदि सज्जनता या जीवनमें सत्यकी उपलब्धि करनेकी आत्यंतिक दृढता उसके दिलमें हो तो वह एकदम उस व्यसनको जड़ मूलसे उखाड़कर फेंकनेका भी साहस करके सुखी हो जाता है। अस्तु। सत्यनिष्ठ महानुभाव को व्यसनोका त्याग अवश्य ही करना चाहिए।

व्यसन इस जगत्में मुख्यतया सात हैं। इनके अतिरिक्त अन्यान्य व्यसन भी आजकी दुनियामें पाये जाते हैं उनको भी सोच विचारकर त्याग देना चाहिए तभी जीवन मंगलमय एवं सुखी बन सकता है। मुख्य सात व्यसन ये हैं- (१) द्यूत (२) मांस (३) सुरा (४) वेश्या (५) चौर्य (६) शिकार (७) परस्त्री। इनमें से मात्र एक-एक व्यसनसे भी महान्-महान् राजाधिराज या उनके वंशके वंश भी महादुःख पात्र बन गये। इतिहास इसका साक्षी है। लो, संक्षेपमें इनका भी विचार

करें-

(१) द्यूत-द्यूत माने जुआ। क्या पाण्डवोंकी दुःखभरी कहानी तुम भूल गये ? क्यों उनको इतने वर्ष वनवासका महादुःख उठाना पड़ा ? अरे ! द्यूत वे न खेलते तो क्यों यह नौबत आती। एक द्यूतसे कई लोग बरबाद हो गये हैं, यह देखा गया है। जुआ खेलकर कोई कुछ अच्छे बनेसे दिखायी देवे तो भी वह धन अधिक काल टिकेगा नहीं इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं। ईर्ष्यासे एवं हार-जीतके द्वन्द्वसे खेले जानेवाले, खेल तथा च सट्टा, कपासका भाव आदि आज जो भी बातें ऐसी दिखती हैं, वे सब द्यूतमें-जुए में शामिल होती हैं। सत्यपूजक द्यूतको अपने जीवनमेंसे सदाके लिए निकाल देगा तभी तो वह सत्यकी उपलब्धि कर सकेगा। अतः द्यूतरूप इस प्रथम महाव्यसनको सत्य देवशास्त्रगुरु- साक्षीपूर्वक हमेशाके लिए छोड़ देना चाहिये। जितना बने दूसरोसे भी छुड़ाना चाहिए।

(२) मांस-मांसभक्षण यह दूसरा महाव्यसन है। इस व्यसनसे भी क्रूरता, हिंस्त्रता, युद्धपिपासुताका पोषण हो विश्वमें अशान्ति बनी रहती है, बढ़ती है यह अब सभीकी समझमें आने लग गया है। प्रायः विदेश मांसभक्षी देश हैं और वहाँ महायुद्ध, अशान्ति आदिके प्रसंग सदा रहते हैं। भारत प्रायः आधुनिक ज्ञात विश्वमें ज्यादातर शाकाहारी शान्तिप्रिय आध्यात्मिक देश है अतः विदेशको अध्यात्मके लिए भारतवर्षकी तरफ ही दौड़ लेनी पड़ती है। मांसव्यसन अनेकों निरपराध मूक जीवोंकीघोर हिंसा कर महापापी बननेका कारण हैं; निर्दयता एवं राक्षसताका, अमानुषताका प्रतीक है; प्रकाशजगत्की पवित्रताके स्थान पर तमोजगत्की अंधकारमयी रात्रि निर्माण करने वाला है। सत्यनिष्ठ मनुष्य अपने पेटको कब्र न बनावे। भगवत्-प्राप्तिके लिये मांस-व्यसनका त्याग अपरिहार्य ही है। सत्यभक्तको इसका त्याग अवश्य ही करना चाहिए-मांसभक्षणका पापमय अमानुषिक कार्य कभी भी नहीं करना चाहिये एवं यथाशक्ति अन्योंको भी इस व्यसनसे बचाना चाहिए।

(३) सुरा-सुरा माने शराब। शराबसे कितने जीवन बरबाद हुए, महा-महा राज-राजेश्वर भी बरबाद हुए यह इतिहासने दिखा दिया है। शराब जितनी सड़ी हो उतनी ही अच्छी मानते हैं ये जड़मतिजन।

इस सड़ी शराबमें अनंतो जीव जन्म-मरण निरंतर कर रहे हैं यह आजके माइस्क्रोप यंत्रसे भी (अणुवीक्षण यंत्र द्वारा) स्पष्ट देखा जा सकता है। यह व्यसन उन अनंतों जीवों की हिंसा कराने वाला; विवेकशून्य-बुद्धिभ्रष्ट बनानेवाला, माँ और पत्नीका भेद ओझल करा देनेवाला; आँतोको जला डालने वाला; गटरों और गंदगीके कूपोंमें गिरा देनेवाला; कुत्ता भी मुँहमें पेशाब कर जाय तो भी बुद्धि ठिकाने पर न लानेवाला; घरमें मार-पीट, दुःख-दारिद्र्य ' लानेवाला और बुरी तरह मौन करा देनेवाला तथा मरणबाद भी अपकीर्ति बनाये रखनेवाला निंद्य व्यसन है। सत्यसेवीको इस व्यसनको जीवनमें कभी भी स्थान न देनेकी प्रतिज्ञा करनी चाहिए और दूसरों को भी इस व्यसनसे यथाशक्ति छुड़ाना चाहिए।

(४) **वेश्या**-वेश्याव्यसन भी अतिनिंद्य हैं। इस वेश्याव्यसनने जगत्में अनेक महारोगी, कोढ़ी, दुःखी, दरिद्री और जिनका जीवन बरबाद हो गया ऐसोंको दिखा दिया है। वेश्या धनसे प्रेम करनेवाली होती है और अनेकोंको बुरी मौत ला देती है। चारुदत्त नामक एक श्रेष्ठीकी कितनी दुर्दशा एक वेश्या ही के कारण हुई, यह मोटे रूपसे प्रसिद्ध है। आज भी इस व्यसनसे कितने ही मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट होकर शरीरमें कीड़े पड़कर बुरी मौतसे मर गये, मर रहे हैं यह सब देखा जा सकता है। अतः सत्यपूजकको ब्रह्मसाधनाके लिये ऐसे महा दुःखदायी दुर्व्यसनका त्याग जीवन भरके लिये स्वयंको भी करना चाहिये एवं दूसरोंसे भी जितना बने करवाना चाहिये।

(५) **चौर्य**-चोरीका व्यसन भी अतिनीचताका है। जिनकी चोरी होती है, होती रहती है उन्हें बहुत दुःख पहुँचता है। चोरी करनेवाला दुनियामें अनेकोंको दुःख सागरमें डुबो देनेवाला महाघातको शैतान सिद्ध होता है। चोरी तो सत्यका खून करना है। न्याय-नीतिरूप पवित्र-व्यवहारसे, उँचे महामानवके पदसे ढकेलकर अन्याय-अनीतिरूप अंधकारमय कुकृत्यमें, नीच शैतानियतके अन्धकूपमें गिरा देनेवाला है यह दुर्व्यसन। न्याय-नीतिकी पवित्रतासे सच्चा धन कमाया जाता है अवश्य ही कमाया जा सकता है और उससे जीवन पवित्र बनाकर भगवत्-प्राप्ति भी हो सकती है। काला बाजार (Black-marcket), चोरी-

व्यापार (Smuggling) आदि करनेवालोंको तथा प्रतिदिन तराजूकी डाँड़ी मार देनेकी चोरीका व्यसन ही लगे हुआँको नाप-तौलमें मनुष्यताके विरुद्ध शैतानियतके पंजेमें फँसे हुए दोनोंको यह सब जानना चाहिए और हमेशाके लिए यह व्यसन छोड़ देना चाहिए व दूसरोंसे भी यथाशक्ति छुड़ाना चाहिए।

(६) शिकार-हिंसा में निरपराध मूक, बेचारे पशु-पक्षियोंकी जान लेनेमें कुछ लोग आनन्द मानते हैं। यह क्रूर आनन्द-आसुरी आनन्द-पिशाचानन्द है। दयारूपी अमृतका अभाव व निर्दयतारूपी विषका समुद्र है। बन्दूक, धनुष-बाण, और और शिकारके आयुध लेकर जंगलोमें, नदियोंमें शिकार करते फिरनेवाले ये मानव विश्वमें निर्दयताकी उपस्थितिको सिद्ध कर दिखानेवाले हैं। उन मूक बेगुनहगारोंको मारकर हमने कितना महापाप किया; कितना उन्हें दुःख दिया, कितने माँ-बच्चोंको बिछुड़ा दिया; कितना उनकी घर-गृहस्थियोंको उजाड़ दिया, इस महापापका फल हमें भी अवश्य ही आगे चलकर भोगना पड़ेगा तब हमारी कितनी घोर दुर्दशा होगी, कितना महापाप है। शिकार खेलना यह सब शिकार-व्यसनवालोंको जानना चाहिए और सत्यप्रभुकी आराधनाके लिए, भगवद्भक्ति कर भगवत्प्राप्ति करनेके लिए शिकार व्यसनको हमेशाके लिए छोड़ देना चाहिए-दूसरोंसे भी छुड़वाना चाहिए।

(७) परस्त्री-परस्त्री का त्याग ब्रह्म साधनामें परम आवश्यक है। स्वस्त्रीसन्तोषव्रत लेना चाहिए और उसमें भी जितना बने अधिकसे अधिक ब्रह्मचर्यका पालन करना चाहिए तमी सत्यकी और चलनेकी बात हो सकेगी। परस्त्री मात्र हर लानेसे रावण जैसे महाबलीका नाम आजतक निंद्य हो गया और न जाने आगे कबतक होता रहेगा। शीलव्रत, ब्रह्मचर्यव्रत, विश्ववंध, जगत्पूज्य, है। ब्रह्मचर्यकी पूर्ण प्रतिज्ञा लिये हुए ब्रह्मसाधक जगत्की समस्त ही स्त्रियोंमें माँ-बहनोंके रूप देखते हैं और आगे चलकर सभी जीवोंमें ही भगवद्रूप देखने लग जाते हैं। भगवत्प्राप्तिके लिए निकले हुए सत्यप्रेमी जीवको यदि वह पुरुषदेहमें निवास करता हो तो स्वपत्नी के सिवा अन्य समस्त ही स्त्रियोंमें माता-बहन व पुत्रीके रूप देखने चाहिए तथा यदि वह स्त्रीदेहमें निवास करता

हो तो स्वपतिके सिवा अन्य समस्त ही पुरुषोमें पिता-बन्धु-पुत्रके रूप देखने चाहिए। जब इन्द्रियविषयोंसे निवृत्ति होकर स्वपत्नी, या स्वपतिका भी त्याग कर समस्त ही जीवोंमें भगवान्के दर्शन करने लग जायेंगे तबकी बात कहना ही क्या। खैर ! सत्यके पुजारी सत्याग्रही जीवको जीवनमें परस्त्री-पुरुष इस महानीच, महानिंद्य, महापापी व्यसनका भी त्याग अवश्य ही करना चाहिए व अन्योको भी इससे छुड़ाना चाहिए।

इन व्यसनोंसे अतिरिक्त अन्य जो भी व्यसन आधुनिक जगत्में पाये जाते हैं- सिनेमा, ताश आदि-आदि जो नैतिक शिखरसे अनीतिकी खाईमें गिराकर मानवको महामानव बनने नहीं देंगे बल्कि स्वैराचारी शैतान बननेमें ही प्रवृत्त करनेवाले होंगे उनको भी सोच-विचारके द्वारा खोज-खोजकर उन सभीका त्याग करना चाहिए और निर्व्यसनी बनना चाहिए। आदतें ही अच्छी चाहिए तो पवित्र पुस्तकें-शास्त्रादि पढ़ना, साधु-सज्जनोंकी संगति, जीवनमें उत्थान लानेवाली बातोंपर ही चर्चा; महापुरुषोंके चरित्र पठन-श्रवण-गायन, भगवद्भक्ति; शुद्ध खान-पान, शुद्ध आचार-विचार-उच्चार; निंदा-दोष आदिमें मौन; सभीके साथ प्रिय, हित, मित, सत्य वचनादि व्यवहार व अपनी शुद्ध आत्माकी तरफ हमेशा जागरूकता ये अच्छी आदतें डालें और जीवनको अन्तर्बाह्य सत्यं-शिवं-सुन्दरं बनावें। उपर्युक्त सप्तव्यसनके बारेमें एक महात्माने इस प्रकार घोषणा की है संस्कृत भाषामें-

“ द्यूतमांससुरावेश्याचौर्याखेटपराङ्गनाः ।

महापापानि सप्तैव व्यसनानि त्यजेद् बुधः ॥ ”

अर्थ- जुआ, मांस, शराब, वेश्या, चोरी, शिकार और परस्त्री इन सातोंका सेवन ही सात व्यसन या महापाप हैं। बुद्धिमान् मानव इनका त्याग करें।

ऐ सत्यवीर !

अब इन अच्छी बातोंको धारण करनेमें देरी मत करो। बहुत समय हो चुका, अब तो जाग उठो। “ Better late than never ” अर्थात् कभी नहींकी अपेक्षा कुछ देरीसे क्यों न हो, सत्यका-अच्छेका स्वीकार करना अच्छा है। सुनो, एक आध्यात्मिक सन्त क्या कह रहे हैं-

चेतन जी ! तुम चेतत क्यों नहिं,
आयु गये ज्यों अंजुलि पानी ।
सोचत-सोचत जात सबै दिन,
सोचत-सोचत रात भी जानी ॥

इस प्रकार आयु देखते-देखते समाप्त हो जायेगी सोचनेमें ही ।
प्रिय ! आज, अभी, इसी क्षण सत्यके लिये आवश्यक उक्त नियमोंको
धारण करनेकी प्रतिज्ञा करो ।

ओ सत्योपासक वीर !

जीवनके उत्थानके लिये तुम्हें दो महामन्त्र यहाँ दिये जायेंगे।
बिल्कुल ध्यानसे सुनो और पूर्ण दृढ़ निश्चयसे उन्हें हृदयमें सदाके लिए
ही धारण करो । हृदयपटलपर टंकोत्कीर्ण रखो उन दोनों महामन्त्रोंको ।
लो, उन दोनों जीवनोत्थान करनेवाले महामन्त्रोंको-

(१) “ अच्छेके लिये ‘ हॉ ’ , बुरेके लिये ‘ ना ’ । ”

(२) “ सत्यके लिये ‘ हॉ ’ , असत्य के लिये ‘ ना ’ । ”

चलो, इन दो प्रदीपोंको हृदयमें अखण्ड जलाकर महान् सत्य
(सम्यग्दर्शन) की शाश्वत उपलब्धि करनेके लिए सत्यकी ओर ।
स्वात्मानुभव यह निश्चयसत्य है । तथा अष्ट मूल (मुख्य) गुणोंके
प्रपालन एवं सप्त व्यसनोंके परित्यागके साथ, सत्यार्थ देव, शास्त्र,
गुरुका ही श्रद्धान अटलरूपसे होना व्यवहारसत्य है । इन दोनोंका आचरण
सत्यकी ओर चल पड़े हुए मानवका परम प्रारम्भिक कर्तव्य है ।
निश्चयसत्य व व्यवहारसत्य दोनों ही जीवनमें आवश्यक हैं ।
निश्चयसत्यके साथ हीका व्यवहार, व्यवहारसत्यकी कोटिमें आता है ।
अतः साधकदशामें दोनोंका ही स्वीकार मनसा वाचा कर्मणा होना चाहिये।

निश्चयसत्यकी पहचान:

सम्यग्दर्शन किसी ने यदि प्राप्त किया है-धारण किया है तो
इसकी पहचान क्या ? यह तो आन्तरिक बात है, सूक्ष्म है । फिर भी
भीतर सम्यग्दर्शनरूप प्रकाश आ गया तो बाहर उसके कुछ चिह्न दिखायी
दिये बगैर नहीं रहते । मुख्यतः ऐसे चिह्न चार बताये गये हैं जो
सम्यग्दर्शनधारी जीवमें-सम्यग्दृष्टि जीवमें अवश्यमेव अपरिहार्यरूपसे

दिखायी देंगे ! वे चार चिह्न हैं-प्रशम, संवेग, अनुकंपा व आस्तिक्य । सम्यग्दृष्टि जीवमें-सत्यधारी जीवमें ये चारों गुण होते ही हैं या इनमेंसे कुछ नहीं भी होते हैं ऐसा प्रश्न यदि उठाया जाय तो सिद्धान्त बताता है कि चारों ही उसमें होने ही पड़ेंगे-एक भी कम नहीं । अब उनका स्वरूप संक्षेपमें ही देखें ।

पहली बात है ' प्रशम ' । प्रशम माने शांत भाव; समता भावा। सम्यग्दृष्टि जीवमें सत्य ही देव-शास्त्र-गुरुओंकी उपासनासे एवं अष्ट मूलगुण धारण तथा सप्त व्यसनत्यागसे प्रशम भाव आ जायगा ! उसके क्रोध, गर्व, कपट व लोभरूप चार कषायभाव-मलिन भाव-उग्र भाव अत्यन्त मंद हो जायँगे और अधिकसे अधिक शांति उसके परिणामोंमें झलकने लग जायगी । यह सत् परिणाम है सत्यदेव-शास्त्र-गुरु-उपासनाका एवं अष्ट मूलगुणधारण व सप्तव्यसनत्यागका । यही शांतिरूप परिणाम जीवको भगवत्स्वरूपकी तरफ आगे बढ़ानेमें सहायक हो जाता है । मिथ्यादृष्टिमें भी शांत परिणाम होता है, किन्तु यह मुक्तिदायक स्वरूपवाला नहीं होता, इतना यहाँ विशेष जानना ।

प्रशम भावके बाद सम्यग्दृष्टि-सत्यधारी जीवमें दिखायी देनेवाले दूसरे चिह्नका नाम है ' संवेग ' । संवेग माने धर्ममें रुचि, धर्ममें प्रेम । अशुभ बातोंसे-अशुद्ध बातोंसे दूर हटकर शुद्ध आत्मस्वरूपमें रमणकी रुचिका नाम संवेग । सच्चा संवेग जिसमें उत्पन्न हो गया ऐसा सत्यधारी जीव शुद्धात्मरमणमें ही अत्यधिक रुचि रखेगा। जिस कालमें शुद्धात्मरमणरूप दशा नहीं है उस कालमें अशुभ भावोंमें भी न गिर जाऊँ, ऐसा विचार कर अशुभसे बचनेके लिए वह शुभ भावोंमें अपने को रखेगा अर्थात् देवपूजा, गुरुसेवा, स्वाध्याय, संयम, तप और दान इन षट्कर्मोंमें लगेगा, अपने व्यापार-उद्यम-नौकरी-खेती आदि जो भी आजीविकाके कार्य हों उनमें न्याय-नीतिसे बर्ताव करता रहेगा । इस प्रकार धर्ममें रुचि रूप यह ' संवेग ' है । मिथ्यादृष्टि जीवमें भी शुभ कार्योंमें रुचि रूप संवेग पाया जाता है, परंतु उसके अंतिम लक्ष्यमें सदोषताके रह जानेसे वह ' वास्तविक आत्मानुभव ' कर नहीं सकता और बिना वास्तविक आत्मानुभूतिके मुक्ति कालत्रयमें असंभव है । वास्तविक स्वात्म-

अनुभूतिकी सम्यक् विधि सत्य शास्त्रोंसे ही जानी जा सकती है और उसका प्रत्यक्ष आस्वादन तो उसका प्रयोग ही करते रहने पर हो जाता है। खैर, धर्ममें रुचि यह ' संवेग ' चिह्नका सामान्य लक्षण है।

' अनुकंपा ' यह तीसरा चिह्न। अनुकंपा माने करुणाभाव, दयाभाव। यह भाव मिथ्यादृष्टि व सम्यग्दृष्टि दोनों प्रकार के जीवोंमें पाया जा सकता है, परंतु सम्यग्दृष्टि जीवमें सत्य ही देव-शास्त्र-गुरु-उपासनासे तथा अष्ट मूलगुणधारणादि ऊँचे-ऊँचे आचार धारण करते जानेसे, सत्यको अच्छी तरह पहचान लिये हुए होनेसे उच्चकोटिकी अनुकम्पा होती है। इस कोटिकी ऊँचे दर्जेकी अनुकंपा मिथ्यादृष्टिमें नहीं होती। मानवमात्रमें ही नहीं बल्कि जगत्के समस्त ही प्राणिमात्रमें सत्यधारी जीव अनुकंपाभाव रखेगा शुभ भावोंकी दशामें, परंतु ' स्व ' पर यथार्थ अनुकंपा करना नहीं भूलेगा। ' स्व ' पर यथार्थ अनुकंपा करना माने शुद्ध स्वात्मस्थितिकी प्राप्तिमें लगना और उसका फल होगा स्वानुभूति। मिथ्यादृष्टिमें यथार्थ स्वानुभूति न होनेसे उसकी अनुकंपामें उतनी कमी रहेगी, यद्यपि वह भी समस्त ही प्राणिमात्रपर अनुकंपा कर सकता है। ' स्व '-अनुकम्पाके साथवाली ' पर-अनुकम्पा ' ही यथार्थ होती है। मात्र पर-अनुकंपा हो, और यथार्थ ' स्व '-अनुकंपारूप बात न हो, तो वह ' अनुकम्पा ' मुक्तिदायिनी नहीं होती।

' आस्तिक्य ' यह सम्यग्दृष्टि जीवका चौथा चिह्न है। उपर्युक्त तीन चिह्न मिथ्यादृष्टिमें भी हो सकते हैं किन्तु ' आस्तिक्य ' गुण सम्यग्दृष्टि जीव हीमें होगा, ऐसा सिद्धान्त है। इहलोक-परलोक मानना, देव, कर्म आदि मानना, ईश्वरत्व मानना, आत्माका अस्तित्व अर्थात् खुदका अस्तित्व मानना, इसे आस्तिक्य भाव कहते हैं। यह आस्तिकपनेकी स्थूल रूप रेखा हुई। वैसे तो इन बातोंको माननेवाले प्रायः सभी धर्म, संप्रदायादि होंगे। परंतु समस्त परसे, अनात्मसे भिन्न ' केवल स्व 'के पूर्ण, परिपूर्ण शुद्ध दशाका सर्वदोष रहित ज्ञान, श्रद्धान एवं ध्यान होनेसे यथार्थ स्वानुभूति जो होती है उसे असली ' आस्तिक्य ' कह सकते हैं। जिसने यथार्थ स्वात्मानुभवका रस क्षणभर भी चखा उसीके पास यथार्थ आस्तिक्य होता है। आत्मा और अनात्माका सही-

सही ज्ञान-श्रद्धान जिसे नहीं उसे इहलोक-परलोकादि मानना, पाप-पुण्य मानना, आत्मा देह से भिन्न है, इस सत्यको भी मानना आदि स्थूलरूप आस्तिक्य हो सकेगा, किन्तु वास्तविक आस्तिक्य सम्यग्दृष्टिमें ही होगा।

इस प्रकार प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य ये चारों गुण या चिह्न सत्यदृष्टिधारीमें अवश्य ही होते हैं। ये सम्यग्दृष्टि व्यक्तिको पहचाननेके स्थूल चिह्न हैं। सम्यग्दृष्टि आत्मामें प्रथमके तीन गुण कम-अधिक हो भी सकते हैं परन्तु चौथा आस्तिक्य गुण पूरा होना ही चाहिये। नहीं तो वह सम्यग्दृष्टि ही नहीं कहा जायगा। अस्तु, भीतर दृष्टि सम्यक् (सत्य) हो गयी तो ये चारों गुणरत्न जगमगा उठते ही हैं। प्रिय भव्य ! सम्यग्दृष्टि अवश्य ही बन जाओ ! तुम्हारा कल्याण हो ही जायगा निस्सन्देह।

उपसंहार

भव्यपाठक ! इस पुस्तिकाका नाम ' सत्यकी ओर ' [Towards the truth] यह रखकर सत्यके खोजीको प्राथमिक कक्षा में स्थूलरूपसे सत्यकी ओर बढ़ानेका निष्पक्ष एवं पवित्र भावनासे वात्सल्यपूर्ण प्रयत्न किया गया है। इसमें विश्ववात्सल्यसे विशाल दृष्टिकोणका अवलम्बन करके हृदयके भाव सरल भाषाशैलीमें प्रवाहित करनेका यत्न किया गया है। प्रिय सत्यके आग्रही भव्यात्मन् ! यदि इसमें कहीं त्रुटि मिले या तुम्हारे हृदयको कहीं ठेस पहुँचे तो शान्तभावसे समझना कि लेखकका पवित्र भाव त्रुटिका या किसीके हृदयको दुखानेका रंचमात्र भी नहीं है। बल्कि सब ही प्राणियोंके लिये कल्याणमय भाव है। यह देखकर इसमें जो अच्छाई-सच्चाई हो उसे सारपूर्ण समझ ग्रहण कर एवं इसमें बुराई तो नहीं है फिर भी जो कहीं बुराई तुम्हें प्रतीत हो तो उसे ग्रहण मत करो। प्रिय सत्योन्मुख चिदात्मन् ! इससे तुम्हारा कल्याण हो एवं तुम्हें ' पूर्णसत्य 'की उपलब्धि हो। तुम्हारे साथ सभीका कल्याण हो। यह ' सत्यकी ओर ' का सहसा आरम्भिक पहला कदम है। यदि इसका तुम प्रतिज्ञापूर्वक स्वीकार कर, जीवनको मंगलमय सत्यसे अलंकृत बनाकर आगे बढ़ो तो इससे भी महत्त्वपूर्ण ऐसा ' सत्यकी ओर '

दूसरा कदम यथावकाश देखनेको मिलेगा । तब तक प्रिय भव्य !
सत्याग्रही ! इसे प्रतिज्ञापूरवक धारण करते हुए चलो और बढ़ो सत्यकी
ओर ।

सत्यजीवन जागृतिका उद्घोष

मुझे को बांधे आया था, मैं हाथ पसारे जाऊँगा ।

काया में रहते आया हूँ, काया को तजकर जाऊँगा ॥१॥
 इस दुनिया में है क्या मेरा ? जीवन इक सपना-सा ही है ।
 “ यह मेरा ” “ वह मेरा ” कहते, यह स्वप्न खत्म जब होता है ॥
 तब जिस-जिस को अपना माना, वह सभी यहीं रह जाता है ।
 इस तन का भी इक छोटा कण, मैं साथ न ले जा पाऊँगा ॥१॥
 ये रिश्ते-नाते संयोगी, है वियोग अवश्य ही इनका ।
 ये धन-कण वैभव संयोगी, है वियोग निश्चित ही इनका ॥
 इन नश्वर मायाजालों में, वह शाश्वत क्या है कभी लखा ?
 “ मैं क्या हूँ ? ” इस पहिचान बिना, वह जीवन व्यर्थ न खोऊँगा ॥२॥
 नश्वर में शाश्वत को खोजूँ, इस असत्य में सत्य को लहूँ ।
 सत्याग्रह-जिद्दी बन जब तक, मैं सत्य न लूँ बेचैन रहूँ ॥
 मैं सत्यान्वेषी, सत्यनिष्ठ, मैं सत्य बिना कुछ न चहूँ ।
 जीवन में सत्याग्रह मेरा, मैं नहीं सत्य बिन जीऊँगा ॥३॥
 “ मैं क्या हूँ ? यह दुनिया क्या है ? कब से कब तक ये बातें हैं ?
 ईश्वर क्या है ? है कहाँ बसा ? यह जन्म-मृत्यु क्या चीजें हैं ?
 झूठा सुख क्या ? शाश्वत सुख क्या ? क्या बन्धन-मोक्ष अवस्था है ”
 इनके रहस्य को समझे बिन, मैं पशु-सम कभी न जीऊँगा ॥४॥
 कृमि-कीटक-पशु-पक्षी सम क्या, मैं यों ही जीकर मर जाऊँ ?
 यह मानव-भव ही सर्व-श्रेष्ठ, क्या इसे व्यर्थ ही मैं खोऊँ ?
 वह मृत्यु समय आ जाने पर, सुज्ञान कहाँ से तब लाऊँ ?
 बस अभी इसी क्षण जागृत हो, मैं सत्य खोजने चल दूँगा ॥५॥
 जो वीतराग, विश्व-ज्ञाता, हाँ ! देव सत्य बस ओ ही है ।
 उसको वाणी ही सत्य शास्त्र, गुरु सत्य, उसी के अनुचर हैं ॥
 ये ही तीनों हैं शरण मुझे, सद्देव-शास्त्र-गुरु मेरे हैं ।
 जीवन-प्रण एक ‘ दयासागर ’, मैं सत्य-प्राप्ति कर ही लूँगा ॥६॥

परिशिष्ट

इस पुस्तिकामें सत्यदर्शन (सम्यग्दर्शन) का विवेचन करते हुए कहा गया है कि विशुद्धसम्यग्दर्शनधारी बनना चाहो तो सम्यग्दर्शनके २५ दोषोंका परित्याग एवं उसके आठ अंगोंका परिग्रहण करना आवश्यक होगा । तदनुसार यहाँ उन तैंतीस विषयोंका विवेचन किया जा रहा है ।

उस सम्यग्दर्शनकी विशुद्धि या पूर्णता आठ अंगों या गुणोंके बिना नहीं हो सकती है जिस प्रकार कि आठ अंगोंके बिना शरीरकी सुन्दरता तथा पूर्णता नहीं हो सकती है । वे आठ अंग या गुण इस प्रकार हैं-

(१) निःशंकितगुणः

सत्यार्थदेव, गुरु तथा उनके द्वारा कहे गये सत्य सिद्धान्त, सन्मार्ग, वस्तुतत्त्व और कर्तव्योंमें शंका या सन्देह न करके दृढ़ श्रद्धा करना तथा इस लोकभय, परलोकभय, मरणभय, वेदनाभय, अरक्षाभय, अगुप्तिभय, आकस्मिकभय-इन सात प्रकारके भयोंसे कातर न होकर निर्भयतासे आत्मशुद्धि, जीवनशुद्धि करना ।

(२) निःकांक्षागुणः

वास्तविक श्रद्धा सम्पन्न मानवको सत्यमार्गपर चलते हुए, विश्वके क्षणिक आनन्दकी, इन्द्रियोंके भोगोंकी, सुवर्ण आदि सम्पत्तिकी, राज्य व पदाधिकारकी और स्वर्गीय सुखादिकी भी इच्छा न करना चाहिये । निष्कामरूपसे आत्मसाधना तथा सत्यका आचरण करना ।

(३) निर्जुगप्सागुणः

सत्य ज्ञानयुक्त मानवके शरीर, आकृति, रोग या वस्त्रादिको देखकर ग्लानि नहीं करना किन्तु उसके गुणोंका आदर करना । दीन, दुखी, दरिद्र, अनाथ, विधवा, ऊँच, नीच, धनी, निर्धन, काला, गोरा, रोगी, स्वस्थ, मूर्ख, पण्डित आदिके शरीर या वातावरणको देखकर घृणा नहीं करना बल्कि उनका सच्चा सुधार करना । वस्तुमें घृणा न करना ।

(४) अमूर्खदृष्टिगुणः

मूर्खतापूर्ण दृष्टि या अन्धश्रद्धाका त्यागकर असत्यमार्ग, असत्य-

कर्तव्य, मिथ्यातत्त्व और इनके समर्थक मानवोंके प्रति मनसा वाचा कर्मणा सहमत न होना और उनका सुधार करना। विवेकबुद्धिसे सत्य-असत्य, हेय-उपादेय, योग्य-अयोग्य, हित-अहितका निर्णय करना। आत्म विश्वास एवं सत्यज्ञानके द्वारा परीक्षा प्रधानी होना।

(५) उपगूहनगुणः

किसी व्यक्ति द्वारा, प्रतिकूल वातावरण, अज्ञान अथवा प्रमादके कारण कोई अपराध, दोष या भूल हो गई हो तो उसके अपराध या दोषको, सब समाजमें अपमानित करनेके लिये प्रगट नहीं करना और एकान्तमें उसके दोषको दूर करनेके लिये शान्तिपूर्ण प्रयत्न करना। आत्मप्रशंसा एवं अपने यशको फैलानेके किसी भी प्रकारके प्रयत्न नहीं करना। अभिमानवश दूसरोंकी निन्दा नहीं करना। नम्रतासे अपने दोषोंको सुधारकी दृष्टिसे प्रगट करना और ग्रहण करनेकी दृष्टिसे अन्यके गुणोंको समाजमें व्यक्त करना।

(६) स्थितिकरणगुणः

सत्यश्रद्धान, सत्कर्तव्य, सदाचार अथवा न्यायमार्गसे, क्रोध, लोभ, कामवासना, पदाधिकार अथवा सर्विस आदिके कारण, कोई व्यक्ति यदि भ्रष्ट हो रहा हो तो विद्वान् नेता अधिकारी आदि समर्थमानवोंके माध्यमसे अनेक उपायों द्वारा उस भ्रष्ट व्यक्तिको अपने सत्यमार्ग या कर्तव्यमें स्थिर करा देना। पंचायतों द्वारा असहायोंका संरक्षण करना। पतियोंको उन्नतिके मार्गमें लगाना। सत्यनिष्ठ संस्थाओं का संरक्षण।

(७) वात्सल्यगुणः

जिस प्रकार गायका बछड़ेके प्रति निःस्वार्थ, निष्कपट और सच्चा प्रेम रहता है उसी प्रकार व्यक्ति कुटुम्ब एवं समाजके प्रति निःस्वार्थ, छलरहित यथाशक्ति सच्चा भ्रातृप्रेम रखना। यथायोग्य मानवका आदरसत्कार करना, प्रेमकी धारासे समाजमें संगठन करना, सहयोग एवं सहानुभूतिकी भावना रखना। असहायको सहायता देना। दुःखमें सहायता करना। मैत्री, प्रमोद, करुणा एवं माध्यस्थ्य भावोंको यथायोग्य मानवके प्रति करना।

(८) प्रभावनागुणः

सत्यदर्शन-ज्ञान-आचरणसे आत्माको विशुद्ध करनेका प्रयास करना । परोपकार, ज्ञान, संयम तथा परमात्माकी भक्ति आदिके द्वारा समाज, देश और विश्वमें अहिंसा, सत्य आदि सिद्धान्तोंका प्रचार एवं प्रसार करना । सभा, संस्था, पत्रसम्पादन, संगीत, साहित्यप्रकाशन आदि अनेक महत्त्वपूर्ण नवीन श्रेष्ठ उपायों द्वारा, सत्यधर्मकी ओर आनेके लिए जनमानसको आकर्षित-प्रभावित करना । धार्मिक उत्सव सार्वजनिक रूपमें करना ।

गुण और दोषोंका ज्ञान किये बिना गुणोंका ग्रहण और दोषोंका त्याग कैसे हो सकता है । अतः गुणोंकी तरह दोषोंका वर्णन करना भी अति आवश्यक है । पच्चीस दोषोंकी रूपरेखापर भी बन्धुवर ध्यान दीजिये।

१. शंका (सन्देह)—सत्यार्थदेव, शास्त्र, गुरुमें तथा विश्वके यथार्थ तत्त्वोंमें सन्देह या शक करना । सात प्रकारके भय से अधीर होगा।

२. कांक्षा (इच्छा)—जगत्की विभूतिमें, इन्द्रियोंके भागोंमें और शारीरिक सुखमें धर्मसाधना द्वारा प्राप्त करनेकी इच्छा करना ।

३. विचिकित्सा—गुणी, सत्यनिष्ठ मानवोंके प्रति अनेक प्रकारसे घृणा करना ।

४. मूढदृष्टि—अन्धविश्वास करना, सत्य-असत्यकी परीक्षा न करना ।

५. अनूपगूहन—मानके वश होकर अपने गुणोंको और अन्य के दोषोंको कहना ।

६. अस्थितिकरण—सत्यमार्गसे भ्रष्टजनोंका संरक्षण करना, उनकी उपेक्षा करना ।

७. अवात्सल्य—गुणीजनोंसे स्नेह न करना, उपेक्षा करना, द्वेषादि करना ।

८. अप्रभावना—अहिंसा, सत्यादिका प्रसार न करना, संकुचित दृष्टिकोण रखना ।

९. कुलमद-पिताके वंशजोके समर्थ होनेपर अभिमान करना ।

१०. जातिमद-माताके वंशजो (मामा) के समर्थ होनेपर घमण्ड करना ।

११. रूपमद-अपने शरीरकी सुन्दरताका घमण्ड करना ।

१२. ज्ञानमद-अपने ज्ञान, शिक्षण देने, साहित्य लेखन आदिका गर्व एवं अन्यका उपहास करना।

१३. धनमद-अपनी धनसम्पत्तिका गर्व करना, अन्यको दरिद्र समझ अपमानादि करना ।

१४. बलमद-अपने अंग, सेना आदिकी शक्तिका गर्व करना, निर्बलको सताना आदि ।

१५. तपमद-अपने सदाचरण, व्रतपालन, तपस्या आदिका गर्व करना, अन्यको पतित समझना ।

१६. शासनमद-अपने पदाधिकार, राज्यविधान आदिका गर्व करना, आक्रमण करना ।

१७. असत्यदेव भक्ति-ईश्वरमें क्रोध, मोह, माया आदि विकार मानना, बलिदान करना आदि ।

१८. असत्य गुरु भक्ति-मायावी, लोभी, अन्यायी, पापलीन गुरुओंकी मान्यता करना ।

१९. असत्यधर्म मान्यता-हिंसा आदिको धर्म, अतत्त्वपर श्रद्धा, मदिरापान आदिको कर्तव्य मानना, धर्मकी आडुमें पापकार्य करना आदि।

२०. मिथ्यादेव भक्त-मिथ्यादेवके भक्तजनकी संगति करना, उसके कार्योंमें सहयोग देना ।

२१. मिथ्यागुरु भक्त-मिथ्यागुरुके सेवक व्यक्तिकी संगति करना, उसके कार्योंमें सहयोग देना ।

२२. मिथ्याधर्मोपासक-मिथ्याधर्मके साधकजनकी संगति करना, उसे सहयोग देना ।

२३. देवमूढता (मूर्खता)-कल्पित देवताओंको ईश्वर मानकर उनसे वरदान मांगना, दुःख दूर करनेकी प्रार्थना करना, पुत्र धन राज्य आदि वैभवको मांगना, उनको स्वार्थवश कर्ता, हर्ता, धर्ता मानना ।

२४. लोकमूर्खता—दूसरे पुरुषोंकी देखादेखी का अन्धश्रद्धासे ऐसे कार्य करना जिनसे आत्माकी विशुद्धि न हो तथा समाज एवं देशका हित न हो। जैसे जीवनके जन्ममरण आदि हजारों कष्टोंको दूर करनेके लिये जलमें नहाना, डूबना आदि। पर्वतपर चढ़ना और गिरना, अग्निमें कूदना और जलना तपाना, धर्मकी साधनाके लिये पत्थरों तथा बालूका ढेर लगाना। प्लेग, कालरा, चेचक आदि रोगोंको देवोंका प्रकोप मानना, धनकी पूजा करना आदि।

२५. गुरुमूर्खता—माया, लोभ आदिके कारण सच्चे गुरुका भेष बनाकर जनतासे पूजा कराना, धनका संग्रह करना, अच्छे-अच्छे भोजन वस्त्र आदि प्राप्त करना, अपनी सेवा कराना, असत्य आशीर्वाद प्रदान करना, अपनी असत्य प्रशंसा करना, नशीली वस्तुओंका सेवन करना, आत्मविश्वास, सदाचार और सत्यज्ञानसे दूर रहना। इन बातोंसे युक्त दुश्चरित्र गुरुकी सेवा-संगति करना गुरुमूर्खता है।

प्रिय भव्यमानव !

जिस प्रकार सच्चे मन्त्रमें एक भी अक्षर कम हो और एक भी दोष मौजूद हो तो वह सर्प, बिच्छू आदिके विषको दूर नहीं कर सकता है उसी प्रकार सत्यदर्शन (सम्यग्दर्शन) में यदि एक भी गुण कम हो और एक भी दोष मौजूद हो तो वह आत्माकी विशुद्धि, जीवनकी शुद्धि और लोकका कल्याण करनेमें समर्थ नहीं हो सकता। तथा वह संसारके जन्म जरा मरण आदि कष्टोंको भी दूर नहीं कर सकता है।

ॐ शान्तिः—

इक्कीस वर्ष पूर्व वीरनिर्वाण संवत् २४७३में इस ग्रंथमालाकी स्थापना हुई थी। स्थापनाके समय व्याख्यानवाचस्पति स्व० पं० देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्रीने अपने महत्त्वपूर्ण भाषणमें इस ग्रंथमाला की आवश्यकता बतलाते हुए कहा था-

“ यह संस्था प्रातःस्मरणीय पूज्य गणेशप्रसादजी वर्णीके प्रति कृतज्ञता प्रकट करनेके लिए ‘ श्रीगणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला ’के नामसे खोली जा रही है।..... ”

आज हम लोगोंके बीच न महामना पूज्य वर्णीजी हैं और न श्रीमान् पं० देवकीनन्दनजी सिद्धान्तशास्त्री। पर उनके नामसे उनके द्वारा संस्थापित ग्रन्थमाला विद्यमान है और वह निश्चित उद्देश्यके अनुसार ज्ञानप्रसारके कार्यमें संलग्न है। अबतक इसके द्वारा २३ महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके हैं।

हमारी अभिलाषा है कि पूज्य वर्णीजी का यह स्मारक-वर्णीग्रंथमाला-सर्वोच्च ज्ञान-प्रकाशन संस्थान बने। इसके लिए हमें निम्न प्रकार सहयोग दिया जा सकता है-

(१) १०१) प्रदान कर इसके संरक्षक सदस्य बनें। संरक्षकोंको ग्रंथमाला अपने प्रकाशित और प्रकाशयमान ग्रन्थ भेंट करेगी। हमारी एक हजार संरक्षक-सदस्य बनानेकी योजना है।

(२) ५१) देकर सहायक सदस्य बनें।

(३) एक-एक सेट खरीदकर इसके साहित्य का प्रसार करें।

(४) विद्वानों, लायब्रेरियों, विश्वविद्यालयों और विदेशोंको अपनी ओरसे ग्रंथ भिजायें।

आशा है साहित्य-प्रेमी पूज्य वर्णीजीकी इस स्मृति एवं कृतज्ञता स्वरूप ग्रंथमालाको अमर बना देंगे।

दरबारीलाल कोटिया
मंत्री

श्री गणेशप्रसाद वर्णी जैन ग्रन्थमाला, वाराणसी-५

ग्रन्थमाला के प्रकाशन

१. मेरी जीवन-गाथा भाग-१	८. ००
२. मेरी जीवन-गाथा भाग-२	अप्राप्य
३. वर्णी-वाणी गाथा भाग-१	८. ००
४. वर्णी-वाणी गाथा भाग-२	प्रेस में पुनः
५. वर्णी-वाणी गाथा भाग-३	८. ००
६. वर्णी-वाणी गाथा भाग-४	अप्राप्य
७. जैनदर्शन (द्वितीय संस्करण)	१०. ००
८. जैनसाहित्यका इतिहास (पूर्वपीठिका)	१०.००
९. प्रज्ञाध्यायी	अप्राप्य
१०. श्रावकधर्म प्रदीप	अप्राप्य
११. तत्त्वार्थसूत्र	५. ००
१२. द्रव्यसंग्रह-भाषावचनिका	४. ००
१३. अपभ्रंश प्रकाश	अप्राप्य
१४. मन्दिरवेदी प्रतिष्ठाकलशारोहणविधि	२. ००
१५. सामायिक पाठ	०. ६०
१६. अनेकान्त और स्याद्वाद	०. ६०
१७. अध्यात्मपत्रावली	(द्वि० सं०)	२. ००
१८. आदिपुराणमें प्रतिपादित भारत	१२. ००
१९. सत्यकी ओर (प्रथम कदम)	(द्वि० सं०)	२. ००
२०. तत्त्वार्थसार	६. ००
२१. समयसार प्रवचन	१२. ००
२२. अपरिग्रह और विश्वशान्ति	अप्राप्य
२३. जैन साहित्य का इतिहास (१, २ भाग)	प्रेस में

प्राप्ति स्थान

मंत्री-श्री गणेशप्रसाद वर्णी ग्रन्थमाला

१-१२८. डुमराव बाग, अरूसी, वाराणसी-५